Think IAS...

दृष्टि The Vision

Think Drishti

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

प्रश्नपत्र-1 (खंड-क)

(हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम (Distance Learning Programme)

Code: CSHL01

संघ लोक सेवा आयोग (UPSC)

हिन्दी साहित्य

प्रश्नपत्र–1 (खण्ड–क)

(हिन्दी भाषा और नागरी लिपि का इतिहास)

641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
दूरभाष : 011-47532596, 8750187501
टोल फ्री : 1800-121-6260
Web : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

पाठ्यक्रम, नोट्स तथा बैच संबंधी updates निरंतर पाने के लिये निम्नलिखित पेज को "like" करें
www.facebook.com/drishtithevisionfoundation
www.twitter.com/drishtiias

UPSC DLP

विषय सूची (Contents)

1.	**हिन्दी भाषा का परिचय**	**9-18**
1.1	हिन्दी भाषा की ध्वनि व्यवस्था	9
1.2	हिन्दी की शब्द व्यवस्था तथा शब्द-संपदा	11
2.	**मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना**	**19-35**
2.1	हिन्दी की पद संरचना	19
2.2	हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था	19
2.3	हिन्दी की सर्वनाम व्यवस्था	20
2.4	हिन्दी की विशेषण व्यवस्था	22
2.5	हिन्दी की क्रिया व्यवस्था	23
2.6	हिन्दी की कारक व्यवस्था	26
2.7	विकारोत्पादक तत्त्व	28
2.8	हिन्दी की लिंग व्यवस्था	29
2.9	हिन्दी की वचन संरचना	30
2.10	हिन्दी की वाक्य संरचना	32
3.	**हिन्दी भाषा की विकास-यात्रा**	**36-37**
3.1	आर्यभाषाओं का ऐतिहासिक विकास	36
3.2	हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास	36
4.	**पालि- मध्यकालीन आर्यभाषा की पहली अवस्था**	**38-40**
4.1	नामकरण की समस्या	38
4.2	पालि की भाषा संबंधी विशेषताएँ	38
5.	**प्राकृत- मध्यकालीन आर्यभाषा की दूसरी अवस्था**	**41-44**
5.1	प्राकृत की अवस्थाएँ	41
5.2	प्राकृत की भाषा संबंधी विशेषताएँ	42
5.3	प्राकृत के भेद	43

6. अपभ्रंश- मध्यकालीन आर्यभाषा की तीसरी अवस्था **45-50**

6.1 विकास प्रक्रिया से जुड़ा विवाद 45

6.2 अपभ्रंश: भाषा या भाषिक विकास की स्थिति 45

6.3 अपभ्रंश की भाषा संबंधी विशेषताएँ 46

6.4 अपभ्रंश के भेद 49

7. अवहट्ट- मध्यकालीन आर्यभाषा की अंतिम अवस्था **51-54**

8. पुरानी/प्रारंभिक हिन्दी **55-58**

9. अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिन्दी- तुलनात्मक अध्ययन **59-62**

10. हिन्दी के विकास में अपभ्रंश/अवहट्ट का योगदान **63-66**

10.1 हिन्दी भाषा को अपभ्रंश का योगदान 63

10.2 हिन्दी साहित्य को अपभ्रंश का योगदान 65

11. मध्यकाल में अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास **67-74**

11.1 भौगोलिक परिचय 67

11.2 अवधी भाषा का उद्‌भव व स्रोत 67

11.3 सूफी काव्यधारा में अवधी का विकास 67

11.4 रामभक्ति काव्यधारा में अवधी का विकास 69

11.5 हिंदू प्रेमाख्यानकारों की अवधी 70

11.6 समकालीन स्थिति 70

11.7 काव्यभाषा के रूप में अवधी का भाषायी/स्वरूपगत विकास 70

11.8 अवधी की शक्तियाँ और सीमाएँ 73

11.9 अवधी (टिप्पणी) 74

12. मध्यकाल में ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास **75-88**

12.1 परिचय 75

12.2 सूरपूर्व युग की ब्रजभाषा 75

12.3 सूरदास का युग 76

12.4 रीतिकालीन काव्य में ब्रजभाषा का विकास 77

12.5 रीतिकाल के पश्चात् ब्रजभाषा का विकास 79

12.6 निष्कर्ष 79

12.7 काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा का स्वरूपगत विकास 80

12.8 अखिल भारतीय काव्यभाषा के रूप में ब्रजभाषा 82

12.9 ब्रजभाषा (टिप्पणी) 85

12.10 ब्रजभाषा में निहित गंभीर कलात्मकता के कारण 85

12.11 ब्रजभाषा की शक्तियाँ और सीमाएँ 86

13. खड़ी बोली **89-105**

13.1 खड़ी बोली का नामकरण 89

13.2 19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का विकास 89

13.3 19वीं सदी में खड़ी बोली के तीव्र विकास के कारण 93

13.4 उन्नीसवीं शताब्दी में खड़ी बोली का साहित्यिक स्वरूप 96

13.5 20वीं शताब्दी में पद्य की भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास 99

13.6 गद्य-भाषा के रूप में खड़ी बोली का विकास 102

14. भाषा, उपभाषा, काव्यभाषा तथा बोली **106-137**

14.1 भाषा और बोली में अंतर 106

14.2 काव्यभाषा तथा बोली में अंतर्संबंध 107

14.3 हिन्दी भाषा का क्षेत्र 108

14.4 हिन्दी की उपभाषाएँ व बोलियाँ 108

14.5 दक्खिनी हिन्दी 117

14.6 पूर्वी हिन्दी और पश्चिमी हिन्दी का अन्तर 123

14.7 हिन्दी के विकास में प्रमुख बोलियों का योगदान 126

14.8 हिन्दी और उसकी बोलियों का संबंध 130

14.9 हिन्दी की बोलियों को भाषा का दर्जा दिए जाने का मुद्दा 132

15. राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा **138-140**

15.1 राजभाषा का तात्पर्य 138

15.2 राष्ट्रभाषा 138

15.3 संपर्क भाषा 138

15.4 राष्ट्रभाषा व राजभाषा में अंतर 139

16. राजभाषा हिन्दी **141-148**

16.1 'राजभाषा' हिन्दी की संवैधानिक स्थिति 141

16.2 राजभाषा हिन्दी के प्रयोग की प्रगति 142

16.3 राजभाषा हिन्दी की प्रगति की समीक्षा 145

16.4 राजभाषा के रूप में हिन्दी के विकास के सुझाव 147

17. राष्ट्रभाषा हिन्दी **149-164**

17.1 राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ 149

17.2 हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क 149

17.3 राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी की ऐतिहासिक विकास-यात्रा 151

17.4 स्वतंत्रता आन्दोलन के दौरान राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का विकास (संक्षिप्त चर्चा) 152

17.5 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में विभिन्न नेताओं का योगदान 154

17.6 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में प्रमुख संस्थाओं का योगदान 157

17.7 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास में दक्षिण भारतीय राज्यों का योगदान 160

17.8 राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास हेतु सुझाव 162

17.9 भूमंडलीकरण के दौर में राष्ट्रभाषा की धारणा की प्रासंगिकता 162

17.10 हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं का संबंध/क्या हिन्दी को महत्त्व देना भाषायी साम्राज्यवाद है? 163

17.11 त्रिभाषा सूत्र 163

18. हिन्दी भाषा का मानकीकरण **165-173**

18.1 मानक भाषा की धारणा 165

18.2 भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया 165

18.3	भाषा के मानकीकरण के कारण	166
18.4	मानक हिन्दी का स्वरूप	166
18.5	मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताएँ	167
18.6	हिन्दी के मानक रूप का ऐतिहासिक विकास	169
18.7	वर्तमान समय में मानकीकरण की समस्याएँ	170
19.	**देवनागरी लिपि**	**174-179**
19.1	'लिपि' की धारणा एवं महत्त्व	174
19.2	भाषा व लिपि का अंत:संबंध एवं अन्तर	174
19.3	देवनागरी लिपि का उद्‌भव	174
19.4	देवनागरी लिपि का नामकरण	175
19.5	मानक या आदर्श लिपि की विशेषताएँ	176
19.6	'देवनागरी लिपि' की विशेषताएँ/वैज्ञानिकता	176
19.7	देवनागरी लिपि की सीमाएँ	177
20.	**देवनागरी लिपि का मानकीकरण**	**180-186**
20.1	देवनागरी लिपि के मानकीकरण के प्रयास	180
20.2	देवनागरी लिपि के मानकीकरण के सुझाव	182
20.3	हिन्दी वर्तनी का मानकीकरण	184
20.4	अखिल भारतीय लिपि के रूप में देवनागरी	185
21.	**हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास**	**187-196**
21.1	परिचय	187
21.2	हिन्दी का वैज्ञानिक विकास	187
21.3	हिन्दी का तकनीकी विकास	188
21.4	कम्प्यूटर में हिन्दी टाइपिंग	191
21.5	तकनीकी भाषा के रूप में नए विकास	193
22.	**पारिभाषिक शब्दावली की समस्या**	**197-201**

22.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ 197

22.2 निर्माण के ऐतिहासिक प्रयास 197

22.3 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की युक्तियाँ तथा सम्बन्धित विवाद 198

22.4 डॉ. रघुवीर का योगदान 199

22.5 पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण की उपयुक्त नीतियाँ 199

22.6 वैज्ञानिक-तकनीकी शब्दावली आयोग द्वारा स्वीकृत सूत्र 200

22.7 निष्कर्ष, मूल्यांकन 201

23. हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन **202-205**

24. भाषा खंड से संबंधित कुछ अन्य विषय **206-212**

24.1 हिन्दी व्याकरण लेखन का ऐतिहासिक विकास 206

24.2 हिन्दी के शब्दकोश 208

24.3 काशी नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा देवनागरी लिपि में सुधार का प्रयास 209

24.4 केंद्रीय हिन्दी निदेशालय 210

24.5 हिन्दी भाषा एवं लिपि के विकास में 'नागरी प्रचारिणी सभा' का योगदान 210

24.6 डॉ. गिलक्रिस्ट का योगदान 211

24.7 खड़ी बोली आन्दोलन व अयोध्या प्रसाद खत्री 211

24.8 प्रयोजनमूलक भाषा के रूप में हिन्दी 211

अध्याय
1

हिन्दी भाषा का परिचय

[यह टॉपिक सीधे तौर पर आपके पाठ्यक्रम में शामिल नहीं है। इसे पाठ्यक्रम के टॉपिक (मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना) को समझने के लिए पढ़ना ज़रूरी? है।]

किसी भी भाषा का अध्ययन चार इकाइयों के स्तर पर किया जा सकता है-

1. ध्वनि व्यवस्था 2. शब्द व्यवस्था 3. व्याकरणिक संरचना 4. लिपि व वर्तनी

1.1 हिन्दी भाषा की ध्वनि व्यवस्था

हिन्दी भाषा में कुल 59 ध्वनियाँ स्वीकार की गई हैं। इस दृष्टि से हिन्दी दुनिया की सर्वाधिक समृद्ध भाषाओं में से एक है। विश्व की सभी भाषाओं में प्रचलित प्राय: सभी ध्वनियाँ इसमें विद्यमान हैं।

इन ध्वनियों को मूल रूप से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है:

(क) स्वर (ख) व्यंजन (ग) अयोगवाह ध्वनियाँ

(क) स्वर

स्वर उस ध्वनि को कहते हैं जिसका उच्चारण बिना किसी अन्य ध्वनि की सहायता के होता है। हिन्दी भाषा में बारह स्वर हैं जिन्हें तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(अ) **मूल स्वर** अर्थात् वे स्वर जिनका कोई विभाजन नहीं हो सकता। ये संख्या में चार हैं - अ, इ, उ, ऋ।

(आ) **दीर्घ स्वर** अर्थात् एक ही मूल स्वर के दो बार जुड़ने से बनने वाले स्वर। ये भी संख्या में चार हैं -

आ (अ + अ) ऊ (उ + उ) ई (इ + इ) ॠ (ऋ + ऋ)

(इ) **संयुक्त स्वर** अर्थात् वे दीर्घ स्वर जो दो अलग-अलग स्वरों से मिलकर बने हों। ये भी संख्या में चार हैं-

ए (अ + इ) ओ (अ + उ) ऐ (अ + ए) औ (अ + ओ)

(ख) व्यंजन

व्यंजन वे ध्वनियाँ हैं जिनके उच्चारण के लिए किसी अन्य ध्वनि (स्वर) की सहायता लेनी पड़ती है। स्वर के बिना व्यंजन पूर्ण नहीं होते। हिन्दी में कुल 45 व्यंजन हैं जिनका कई आधारों पर वर्गीकरण किया जा सकता है-

1. अवरोध के आधार पर व्यंजनों के भेद

इस आधार पर व्यंजनों के तीन भेद किये जाते हैं - **अंतस्थ, ऊष्म** व **स्पर्श।**

(अ) अंतस्थ व्यंजन: ये वे व्यंजन हैं जिनका उच्चारण स्वर और व्यंजन का मध्यवर्ती होता है। इन व्यंजनों में श्वास का अवरोध बहुत कम होता है। ऐसे व्यंजन चार हैं- **य, र, ल, व।** य और व में यह प्रवृत्ति अधिक है। इस विशेष योग्यता के कारण इन दोनों को **'अर्द्धस्वर'** भी कहा जाता है।

(आ) ऊष्म या संघर्षी व्यंजन: ये वे व्यंजन हैं जिनके उच्चारण में विशेष रूप से श्वास का घर्षण होता है। वस्तुत:, जीभ तथा होठों के निकट आने के कारण इनके उच्चारण में वायु रगड़ खाती हुई बाहर निकलती है व इसी से संघर्ष/घर्षण होता है। ये संख्या में चार हैं- **श, ष, स, ह।**

अध्याय
2

मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना

किसी भाषा में निहित व्यवस्था उसके व्याकरण पर निर्भर होती है। व्याकरण का अध्ययन चार भागों में बाँटकर किया जा सकता है-

1. पद संरचना 2. कारक व्यवस्था 3. विकारोत्पादक तत्त्व 4. वाक्य संरचना

हम क्रमशः इन चारों भागों का अध्ययन करेंगे।

2.1 हिन्दी की पद संरचना

पद संरचना पर आरंभिक चर्चा शब्द संपदा के अंतर्गत की जा चुकी है। शब्द और पद प्रायः समानार्थक शब्द हैं। इनमें अंतर सिर्फ यह है कि व्याकरण की व्यवस्था से युक्त होने के बाद शब्द पद कहलाते हैं।

पहले बताया जा चुका है कि हिन्दी के पद दो प्रकार के हैं- विकारी तथा अविकारी। विकारी पदों में संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण तथा क्रिया शामिल हैं जबकि अविकारी पदों में क्रियाविशेषण, योजक या समुच्चयबोधक, संबंधबोधक तथा विस्मयादिबोधक पद शामिल हैं। अविकारी पदों के संबंध में जो चर्चा पहले हो चुकी है, वह पर्याप्त है। विकारी पदों के संबंध में यहाँ विस्तृत चर्चा की जा रही है।

2.2 हिन्दी की संज्ञा व्यवस्था

परिचय

संज्ञा वह पद है जो किसी व्यक्ति, वस्तु, विचार, भाव, द्रव्य, समूह या जाति के नाम को व्यक्त करता है। वाक्य निर्माण से पूर्व संज्ञा पद **प्रातिपदिक** कहलाता है किंतु कारक के अनुसार विभक्ति या परसर्ग से जुड़कर यही प्रातिपदिक **'संज्ञापद'** बन जाता है।

संज्ञा के भेद

हिन्दी में संज्ञाओं को प्रायः तीन वर्गों में विभाजित किया जाता है- 'व्यक्तिवाचक संज्ञा', 'जातिवाचक संज्ञा' व 'भाववाचक संज्ञा'। कुछ विद्वान इन तीन के अतिरिक्त दो और वर्गों- 'द्रव्यवाचक संज्ञा' व 'समूहवाचक संज्ञा' को भी स्वीकार करते हैं। अब यह मान लिया गया है कि ये दोनों वर्ग संज्ञा के स्वतंत्र भेद न होकर जातिवाचक संज्ञा के ही उपभेद हैं। संज्ञा के भेदों का परिचय इस प्रकार है -

(क) व्यक्तिवाचक संज्ञाः किसी व्यक्ति, स्थान, प्राणी या वस्तु विशेष का नाम बताने वाला पद व्यक्तिवाचक संज्ञा कहलाता है। उदाहरण के लिये - राम, श्याम, सीता, दिल्ली, कानपुर इत्यादि व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ हैं।

(ख) जातिवाचक संज्ञाः जब कोई पद किसी वर्ग के नाम को व्यक्त करता है तो जातिवाचक संज्ञा कहलाता है। व्यक्तिवाचक संज्ञा किसी न किसी जातिवाचक वर्ग की सदस्य होती है। उदाहरण के लिये राम, श्याम जैसी व्यक्तिवाचक संज्ञाएँ 'मनुष्य' जातिवाचक संज्ञा की सदस्य हैं।

जातिवाचक संज्ञा के अन्तर्गत दो उपभेदों की चर्चा भी की जा सकती है-

(अ) समूहवाचक संज्ञाः ये वे पद हैं जो किसी व्यक्ति, प्राणी या वस्तुओं के समूह को व्यक्त करते हैं। इन्हें समूह होने के कारण व्यक्तिवाचक नहीं मान सकते व विशिष्ट होने के कारण जातिवाचक नहीं मान सकते। उदाहरण के लिये *"सेना आगे बढ़ रही है"* वाक्य में 'सेना' समूहवाचक संज्ञा है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. मानक हिन्दी के सर्वनामों का सोदाहरण विवेचन कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2016**
2. मानक हिन्दी की कारक-व्यवस्था का सोदाहरण विवेचना कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2015**
3. मानक हिन्दी के स्वरूप पर प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2013**
4. मानक हिन्दी की व्याकरणिक विशेषताओं का परिचय दीजिए। **U.P.S.C. (Mains) 2013**
5. मानक हिन्दी का विवेचन निम्नलिखित दृष्टियों से कीजिये: **U.P.S.C. (Mains) 2012**
   (क) ध्वनि-संरचना (ख) रूप-संरचना (ग) वाक्य-संरचना
6. परिनिष्ठित हिन्दी के व्याकरणिक स्वरूप की विवेचना कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2011**
7. हिन्दी की विभिन्न व्याकरणिक कोटियों का उल्लेख करते हुए पद-रचना में उनकी भूमिका स्पष्ट कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2009**
8. हिन्दी की लिंग-व्यवस्था (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2009**
9. मानक हिन्दी की व्याकरणिक संरचना पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। **U.P.S.C. (Mains) 2008**
10. वाक्य रचना के विभिन्न तत्त्व (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2004**
11. हिन्दी भाषा में लिंग समस्या (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2003**
12. आधुनिक हिन्दी में लिंग और वचन व्यवस्था (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2002**
13. आधुनिक हिन्दी की वाक्य संरचना को सोदाहरण निरूपित कीजिये। **U.P.S.C. (Mains) 2001**
14. आधुनिक हिन्दी में लिंग व्यवस्था (टिप्पणी) **U.P.S.C. (Mains) 2001**

अध्याय
3

हिन्दी भाषा की विकास-यात्रा

हिन्दी एक आधुनिक आर्यभाषा है जिसका विकास आर्यों की मूल भाषा संस्कृत से हुआ है। भारतीय तथा बाहरी क्षेत्रों में आर्य भाषाओं का विकास अलग-अलग पद्धति पर हुआ है।

3.1 आर्यभाषाओं का ऐतिहासिक विकास

भारतीय आर्यभाषा के विकास को प्राय: तीन चरणों में विभक्त किया जाता है-

1. प्राचीन आर्यभाषाएँ

इनका समय लगभग 2000 ई. पू. से 500 ई. पू. तक माना गया है। इसके अन्तर्गत दो स्थितियाँ शामिल हैं- **वैदिक संस्कृत** (2000 से 1000 ई. पू.) तथा **लौकिक संस्कृत** (1000 से 500 ई. पू.)।

2. मध्यकालीन आर्यभाषाएँ

इनका काल 500 ई. पू. से 1000 ई. तक स्वीकार किया गया है। इस भाग के अन्तर्गत चार चरण मिलते हैं- **पालि** (500 ई. पू. से ईस्वी सन् के आरंभ तक), **प्राकृत** (ईस्वी सन् के आरंभ से 500 ई. तक) और **अपभ्रंश** तथा **अवहट्ट** (500 ई. से 1100 ई. तक)।

3. आधुनिक आर्यभाषाएँ

इनका समय लगभग 1100 ईस्वी से अभी तक माना जाता है। इनमें हिन्दी, बांग्ला, उड़िया, असमी, मराठी, गुजराती, पंजाबी तथा सिन्धी जैसी भाषाएँ शामिल हैं।

3.2 हिन्दी भाषा का ऐतिहासिक विकास

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी एक आधुनिक आर्यभाषा है जिसका विकास मूलत: प्राचीन आर्यभाषा संस्कृत से हुआ है। संस्कृत और हिन्दी के संपर्क सूत्र को स्थापित करने वाली भाषिक स्थितियों को हम मध्यकालीन आर्यभाषाएँ कहते हैं। अत: हिन्दी के विकास का अध्ययन मध्यकालीन आर्यभाषाओं से आरंभ करना उचित प्रतीत होता है।

हिन्दी का उद्भव कब हुआ, इस पर भाषाविज्ञानियों में गंभीर मतभेद है। कुछ का दावा है कि अपभ्रंश के विकास से ही हिन्दी का विकास मान लेना चाहिए तो दूसरे छोर पर कुछ अन्य का मत है कि पुरानी हिन्दी के विकास से पहले की स्थितियों को अपभ्रंश और अवहट्ट के रूप में स्वतंत्र माना जाना चाहिए और हिन्दी की शुरुआत पुरानी या प्रारंभिक हिन्दी से मानी जानी चाहिए।

वर्तमान भाषा विज्ञान में सामान्यत: पुरानी हिन्दी से ही हिन्दी की शुरुआत माने जाने का प्रचलन है। इसका अर्थ है कि हिन्दी का आरंभ लगभग 1100 ईस्वी में हो गया था। किंतु, यह भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि तब से आज तक की विकास यात्रा कई अलग-अलग प्रवृत्तियों पर आधारित है। इस कारण हिन्दी के विकास को भी तीन चरणों में बाँटा जाता है-

1. प्राचीन हिन्दी (1100 ई. से 1350 ई. लगभग)
2. मध्यकालीन हिन्दी (1350 ई. से 1850 ई. लगभग)
3. आधुनिक हिन्दी (1850 ई. से अभी तक)

अध्याय
4

पालि- मध्यकालीन आर्यभाषा की पहली अवस्था

मध्यकालीन आर्य भाषाओं का विकास जिस भाषा से आरंभ हुआ है, उसी का नाम 'पालि' है। सामान्य रूप से इसका कालखंड 500 ईस्वी पूर्व से ईस्वी सन् की शुरूआत तक माना गया है।

पालि के अध्ययन के स्रोत

पालि भाषा के अध्ययन के मुख्य आधार हैं त्रिपिटक (बुद्ध वचन), अशोक के कुछ अभिलेख तथा तत्कालीन अन्य साहित्य। बौद्ध धर्म का प्रचार भारत से बाहर तक होने के कारण पालि भाषा का भी अत्यधिक क्षेत्र विस्तार हुआ।

4.1 नामकरण की समस्या

पालि भाषा का नाम पालि किस प्रकार पड़ा, इस विषय पर विद्वानों में मतभेद है। मतभेद का आधार यह है कि विभिन्न विद्वानों ने पालि शब्द की उत्पत्ति अलग-अलग शब्दों से मानी है। इनमें से कुछ व्याख्याएँ इस प्रकार हैं :

(क) पालि की व्युत्पत्ति **'पल्लि' अर्थात ग्राम** से स्वीकार की जा सकती है। इस अर्थ में पालि से तात्पर्य होगा 'ग्रामीण भाषा'।

(ख) पालि शब्द की उत्पत्ति **'पाटलि' (पाटलिपुत्र)** से भी मानी गई है, इस संदर्भ में पालि का अर्थ होगा मगध की भाषा।

(ग) पालि शब्द का तीसरा संबंध **'पंक्ति'** से माना गया है। बुद्ध वचनों में जो पंक्तियाँ प्रयुक्त की गई हैं, उन्हें भी पालि कहा जाता है। सारा बुद्ध साहित्य इसी भाषा में होने के कारण इस मत को काफी अधिक महत्त्व दिया जाता है।

(घ) कुछ भाषा वैज्ञानिक 'पालि' शब्द को **प्राकृत शब्द का तद्भव रूप** मानते हैं। उनके अनुसार 'प्राकृत' से पहले 'पाइल' तथा अंत में 'पालि' शब्द का विकास हुआ। इस दृष्टि से प्राकृत का ही विशेष रूप पालि है।

(ङ) कुछ विद्वानों ने यह भी माना है कि पालि का अर्थ **पालने वाली** है। यह मत मानने वाले विद्वान पालि को बौद्ध साहित्य को पालने वाली या रक्षा करने वाली भाषा मानते हैं।

उपरोक्त नामकरणों में से कौन सा सही है, यह प्रामाणिक रूप से बता पाना संभव नहीं है। इतना अवश्य है कि यह मगध की भाषा नहीं है क्योंकि मागधी के लक्षणों से यह मेल नहीं खाती। सामान्यत: विद्वानों की मान्यता यही है कि यह भाषा मथुरा और उज्जैन के बीच के क्षेत्र में विकसित हुई थी, किंतु धीरे-धीरे इतनी व्यापक हो गई कि बुद्ध ने अपने धर्म के प्रचार के लिए इसी भाषा को माध्यम बनाया।

भाषा वैज्ञानिकों की सामान्य मान्यता यह है कि पालि शब्द का वास्तविक संबंध 'पंक्ति' या 'प्राकृत' शब्द से है। पंक्ति से इसलिये कि यह भाषा मूलत: बौद्ध साहित्य से संबंधित है तथा प्राकृत से इसलिए कि भाषिक स्वरूप की दृष्टि से यह प्राकृत से काफी मिलती जुलती है। कुछ विद्वानों ने इन दोनों मतों को मिलाकर इसे बौद्ध-प्राकृत भी कहा।

4.2 पालि की भाषा संबंधी विशेषताएँ

1. ध्वनि संरचना संबंधी विशेषताएँ

(क) पालि के **स्वर** इस प्रकार हैं-

ह्रस्व - अ, इ, उ, एॅ, ओॅ **दीर्घ** - आ, ई, ऊ, ए, ओ

(ख) पालि की स्वर संरचना में संस्कृत के 'ऐ' तथा 'औ' जैसे जटिल संयुक्त स्वर प्राय: ए तथा ओ के रूप में प्रचलित रहे, जैसे-

शैलं > सेलं कौशल > कोसल

अध्याय
5

प्राकृत- मध्यकालीन आर्यभाषा की दूसरी अवस्था

मध्यकालीन आर्य भाषा के विकास की दूसरी अवस्था को प्राकृत नाम से व्यक्त किया जाता है। सामान्य रूप से इसका कालखंड ईस्वी सन् के आरंभ से 500 ईस्वी तक स्वीकार किया गया है।

प्राकृत के अध्ययन के स्रोत

प्राकृत का अध्ययन करने के लिए आधार सामग्री के रूप में प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। आदिकाल का बौद्ध और जैन साहित्य मूल रूप से मागधी और अर्ध-मागधी प्राकृतों में ही रचा गया है। इनके अतिरिक्त प्राकृत साहित्य में सेतुबंध तथा गौडवहो (गौड वध) जैसे महाकाव्य तथा गाहासतसई (गाथासप्तशती) और वज्जालग्ग जैसे खंडकाव्य भी रचे गए हैं। इन्हीं साहित्यिक स्रोतों के आधार पर प्राकृत भाषा की भाषिक प्रवृत्तियों का विश्लेषण किया जा सकता है।

प्राकृत और संस्कृत का संबंध

प्राकृत के संदर्भ में एक महत्त्वपूर्ण विवाद यह है कि यह संस्कृत से विकृत होकर बनी भाषा है या वह मूल भाषा है जिसकी विकसित एवं संस्कारित अवस्था को संस्कृत कहा जाता है। हेमचंद्र, मार्कण्डेय तथा सिंहदेव आदि आचार्यों का मानना है कि संस्कृत मूल वाणी या देववाणी है तथा प्राकृत उसी से विकसित हुई है- *'प्रकृति संस्कृतम्, तद्भव प्राकृतम्'*। इसके विपरीत कुछ अन्य विद्वान जिनमें पिशल का नाम महत्त्वपूर्ण है, मानते हैं कि प्राकृत जन बोलियों और जन-भाषाओं से निर्मित भाषा है, और इसी का अभिजात रूप संस्कृत बनकर विकसित हुआ।

5.1 प्राकृत की अवस्थाएँ

किशोरीदास वाजपेयी आदि वैयाकरणों ने प्राकृत के विकास को कुछ अवस्थाओं में विभाजित किया है। उनकी दृष्टि में प्राकृत के तीन चरण हैं- पहली प्राकृत, दूसरी प्राकृत तथा तीसरी प्राकृत।

पहली प्राकृत वह है जिसका जन्म सभ्यता के आरंभ में लोक प्रचलन के माध्यम से हुआ होगा। ऐसा माना जाता है कि यही प्राकृत ऋषियों तथा वैयाकरणों के हाथों में पड़कर संस्कारित होते-होते वैदिक संस्कृत बन गयी। वैदिक संस्कृत बनने के बाद हिन्दी तक का विकास सरलीकरण की प्रक्रिया से हुआ है। वैदिक संस्कृत सरल होकर लौकिक संस्कृत हुई और लौकिक संस्कृत सरल होकर प्राकृत बनी जिसे **दूसरी प्राकृत** कहा जाता है। दूसरी प्राकृत और पहली प्राकृत एक दूसरे से असम्बद्ध हों, ऐसा नहीं है। समय के बड़े अन्तर के कारण इनका बाहरी स्वरूप अचानक देखने पर चाहे अलग-अलग लगता हो, गहराई से देखने पर ये दोनों एक ही परम्परा की दो कड़ियाँ प्रतीत होती हैं। प्राकृत के बाद जिसे अपभ्रंश कहा जाता है, कुछ विद्वान उसी को **प्राकृत की तीसरी अवस्था** कहते हैं। जब हम प्राकृत को इन तीन अवस्थाओं के रूप में देखते हैं तो प्राकृत से हमारा अर्थ साधारण या प्रकृतजनों द्वारा बोली जाने वाली भाषा से होता है।

कुछ विद्वानों ने पहली प्राकृत पालि को ही कहा है। ये विद्वान प्राकृत से उसी भाषा को लेते हैं जो लौकिक संस्कृत से विकसित हुयी। इन विद्वानों का मानना है कि लौकिक संस्कृत से प्राकृत का ही विकास हुआ था किन्तु बौद्ध धर्म के आगमन के कारण उसी की एक कृत्रिम शैली पालि नाम से प्रसिद्ध हुयी। इस कारण जो वास्तविक रूप में प्राकृत थी उसे साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित होने के लिए लगभग 500 वर्ष इन्तजार करना पड़ा।

सामान्य रूप से वर्तमान काल में प्राकृत नाम उस भाषा के लिए रूढ़ हो गया है जो ईस्वी सन् की शुरूआत से पाँचवी शताब्दी तक प्रमुख साहित्यिक भाषा के रूप में प्रचलित रही है। कुछ विद्वानों ने इसके संदर्भ को स्पष्ट करने के लिए इसे **'साहित्यिक प्राकृत'** भी कहा है।

अध्याय
6

अपभ्रंश- मध्यकालीन आर्यभाषा की तीसरी अवस्था

अपभ्रंश का शाब्दिक अर्थ है भ्रष्ट भाषा। व्याडि, पतंजलि, हेमचन्द्र और दण्डी आदि प्रमुख भाषाशास्त्रियों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि जिस भाषा के शब्द संस्कृत के मानक शब्दों से विकृत हुए हों, उसे ही भ्रष्ट भाषा या अपभ्रंश कहा जाता है। कालक्रम की दृष्टि से अपभ्रंश मध्यकालीन आर्यभाषाओं की तीसरी और अंतिम अवस्था का नाम है। इसका समय पालि, प्राकृत के बाद लगभग पाँच सौ ईस्वी में आरंभ होता है तथा लगभग ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी में यह पुरानी हिन्दी में पर्यवसित हो जाती है। पुरानी हिन्दी से आधुनिक आर्यभाषा का आरम्भ माना गया है।

अपभ्रंश के अध्ययन के स्रोत

अपभ्रंश की पहचान के लिए आधुनिक भाषा विज्ञान के पास कई स्रोत उपलब्ध हैं। इनमें से कुछ शिलालेखों के रूप में हैं और कुछ साहित्यिक रचनाओं के रूप में। आठवीं शताब्दी में सिद्ध साहित्य के विकास में पूर्वी प्राकृत मिश्रित अपभ्रंश मिलती है। बाद के समय में बौद्ध, रासो तथा विशेषकर जैन साहित्य की रचनाओं में अपभ्रंश के प्रयोग के उदाहरण दिखायी देते हैं। इनमें "महापुराण", "जसहर चरिउ", "णायकुमार चरिउ", "जिनदत्त कहा", "भविस्यत कहा", "पाहुड़ दोहा" आदि रचनाएँ प्रमुख हैं। कालिदास के नाटकों में भी निम्नवर्ग के पात्र इसी भाषा का प्रयोग करते हैं।

6.1 विकास प्रक्रिया से जुड़ा विवाद

अपभ्रंश के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण विवाद यह है कि इस भाषा का विकास केवल संस्कृत की परम्परा में हुआ है या विदेशी तत्वों का प्रभाव भी इसके विकास की प्रक्रिया में शामिल है। पालि व प्राकृत का विकास मुख्यतः संस्कृत की देशीय परम्परा में ही हुआ है किंतु अब यह बात स्वीकृत है कि अपभ्रंश के विकास में संस्कृत की देशीय परम्परा के साथ-साथ कुछ बाहरी प्रभाव भी शामिल रहे हैं। सातवीं शताब्दी के आस-पास उत्तर पश्चिमी भारत में गुर्जर, आभीर और जाट आदि समूह बसने लगे थे जो संस्कृत की परम्परा में दीक्षित नहीं थे। उनकी भाषा को भी आरंभ में भ्रष्ट समझा गया। धीरे-धीरे उनकी भाषा पर शौरसेनी प्राकृत का प्रभाव पड़ा तथा उनकी भाषा क्षेत्रीय भाषा के नज़दीक आने लगी। सत्ता प्राप्त होने पर यही नये समूह राजपूत कहलाने लगे तथा इनकी भाषा तीव्र गति से विकसित होकर राजभाषा व साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। अपभ्रंश का सम्बन्ध इसी मिश्रित भाषिक परम्परा से माना जाता है।

6.2 अपभ्रंश: भाषा या भाषिक विकास की स्थिति

अपभ्रंश के सम्बन्ध में एक अन्य विवाद यह भी है कि यह अपने आप में एक विशेष 'भाषा' है या भाषिक विकास की एक 'स्थिति'? इन दोनों में अन्तर यह है कि यदि यह भाषा है तो एक निश्चित समय और स्थान में इसका विकास दिखना चाहिए और यदि यह भाषिक विकास की 'स्थिति' है तो हिन्दी क्षेत्र की प्रत्येक प्राकृत के बाद अपभ्रंश की स्थिति आनी चाहिए। पहली स्थिति में अपभ्रंश एक भाषा होगी जबकि दूसरी स्थिति में सभी प्राकृतों के बाद एक-एक अपभ्रंश होगी। सुनीति कुमार चटर्जी जैसे विद्वानों ने स्पष्ट माना है कि अपभ्रंश एक भाषा नहीं, भाषिक विकास की केवल एक स्थिति है और छठी से ग्यारहवीं शती तक प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था देखी जा सकती है। दूसरा मत यह है कि अपभ्रंश हिन्दी प्रदेश के उत्तर-पश्चिम भूभाग की भाषा थी। समकालीन भाषाविज्ञान मानता है कि प्रारम्भ में अपभ्रंश का विकास उत्तर-पश्चिमी भूभाग में ही हुआ होगा किंतु राजभाषा और साहित्यिक भाषा बनने के बाद इसका प्रभाव पूरे हिन्दी क्षेत्र पर पड़ा होगा। इस प्रक्रिया में अपनी निजी परम्परा तथा इस बाहरी प्रभाव से मिलकर प्रत्येक प्राकृत की एक अपभ्रंश अवस्था पैदा हुई होगी। इस मत के भी कई अपवाद हो सकते हैं किंतु आमतौर पर इस मत को स्वीकार करने में कोई बाधा नहीं है।

अध्याय
7

अवहट्ट- मध्यकालीन आर्यभाषा की अंतिम अवस्था

अवहट्ट शब्द संस्कृत शब्द 'अपभ्रष्ट' का तद्भव रूप है। इस संबंध में एक समस्या यह है कि अपभ्रंश और अवहट्ट दोनों शब्द समानार्थी हैं क्योंकि दोनों ही 'भ्रष्ट भाषा' को व्यक्त करते हैं। इसलिए स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि क्या अवहट्ट अपभ्रंश से अलग एक स्वतंत्र भाषा है? यह समस्या इसलिए और भी जटिल हो जाती है क्योंकि उस काल के जितने भी कवियों और विद्वानों ने तत्कालीन भाषाओं के नाम गिनाए हैं, उन्होंने या तो अपभ्रंश का नाम लिया है या अवहट्ट का; किसी ने भी इन दोनों का नाम एक साथ नहीं लिखा। इससे यह संभावना प्रतीत होने लगी कि ये दोनों नाम एक ही भाषा के हैं, जिनमें से कहीं किसी एक का प्रयोग होता है और कहीं दूसरे का।

आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के अनुसंधानों से अब यह साबित हो चुका है कि अवहट्ट केवल एक भाषिक शैली नहीं बल्कि एक स्वतंत्र भाषा है। इस भाषा का काल लगभग नवीं से ग्यारहवीं शताब्दी के बीच स्वीकार किया गया है, यद्यपि साहित्यिक प्रयोग की दृष्टि से यह भाषा चौदहवीं शताब्दी तक दिखाई देती है। संदेशरासक तथा कीर्तिलता इस भाषा से संबंधित दो प्रमुख रचनाएँ हैं। इनके अतिरिक्त 'वर्ण रत्नाकर' और 'प्राकृत पैंगलम' के कुछ अंश, 'बाहुबलि रास' आदि भी इसके स्त्रोतों के रूप में स्वीकार किए जाने वाले ग्रंथ हैं। कीर्तिलता में तो विद्यापति ने स्पष्टत: संस्कृत की तुलना में अवहट्ट को वरीयता देने की बात कही है-

"सक्कय बाणी बुहजण भावइ।
पाउअं रस को मम्म नपावइ।
देसिल बअणा सभ जण मिट्ठा।
तं तै सण जंपऔ अवहट्ठा।।"

1. ध्वनि संरचना

(क) अवहट्ट में प्रयुक्त होने वाले **स्वर** निम्नलिखित हैं -

ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ओ ॅ दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ औ

स्पष्ट है कि अपभ्रंश के सभी स्वरों के अतिरिक्त अवहट्ट में दो अतिरिक्त स्वर मिलते हैं - **'ऐ'** और **'औ'**। संस्कृत में ये दोनों स्वर संध्यक्षर के रूप में थे, तथा इनका उच्चारण 'अइ' तथा 'अउ' के रूप में होता था। अवहट्ट में ये पहली बार सरल स्वर बनकर उभरे, जैसे - बैल, चौड़ा।

(ख) संस्कृत के शब्दों में **'ऋ' का प्रयोग** बना हुआ था किंतु तद्भव शब्दों मे 'ऋ' के स्थान पर 'अ', 'इ', 'ए' और 'उ' का प्रयोग तेजी से बढ़ने लगा था। यह प्रवृत्ति शुरु तो अपभ्रंश में ही हो गई थी, अवहट्ट में आकर और बढ़ने लगी। उदाहरण के लिए-

पृच्छ > पुच्छ हृदय > हिय

(ग) **अनुनासिकता** के संबंध में अपभ्रंश में तीन प्रवृत्तियाँ दिखती थीं। अवहट्ट में उनमें से एक प्रवृत्ति **'अकारण अनुनासिकता'** बनी हुई है। उदाहरण के लिए -

द्यूत > जूँआ निद्रा > निंद ग्रीवा > गींव

(घ) अवहट्ट की ध्वनि संरचना में एक खास प्रक्रिया दिखती है जिसे **'क्षतिपूरक दीर्घीकरण'** कहते हैं। संयुक्त व्यंजनों को सरल करने के लिए अपभ्रंश में दोनों व्यंजनों में से एक के द्वित्वीकरण की जो प्रक्रिया शुरू हुई थी, उसी का अगला चरण 'क्षतिपूरक दीर्घीकरण' है। द्वित्वीकरण की प्रक्रिया में संयुक्त व्यंजनों की जो क्षति हुई, उसकी पूर्ति के

अध्याय
8

पुरानी/प्रारंभिक हिन्दी

पुरानी हिन्दी अपभ्रंश तथा आधुनिक आर्यभाषाओं के बीच की कड़ी है। विभिन्न विद्वानों में इसके स्वरूप को लेकर मतभेद की स्थिति है। इस भाषा का काल लगभग तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी का है जब पहली बार हिन्दी तथा उसकी बोलियाँ स्वतंत्र रूप से प्रकट होने लगी थीं। इस भाषिक स्थिति को **चंद्रधर शर्मा गुलेरी** ने **'पुरानी हिन्दी'** नाम दिया है और उन्हीं के द्वारा किया गया यह नामकरण आज तक प्रचलित है। इस भाषा को अन्य विद्वानों ने अन्य नामों से व्यक्त किया है, जैसे **आचार्य द्विवेदी** इसे **'उत्तरकालीन अपभ्रंश'** कहते हैं, **पंडित वासुदेवशरण अग्रवाल** इसे **'उदीयमान हिन्दी'** कहते हैं, तो **डॉ. शिवप्रसाद सिंह** इसे **'परवर्ती संक्रातिकालीन अपभ्रंश'** नाम देते हैं।

अध्ययन के स्रोत

आरंभिक हिन्दी के प्रामाणिक स्रोत कौन से हैं, यह एक विवादास्पद प्रश्न है। विद्वानों ने कई ऐसे स्रोत बताये हैं जिनमें सरहपा, कण्हपा आदि सिद्धों की रचनाएँ, जैन कवियों पुष्पदंत तथा स्वयंभू की रचनाएँ, विद्यापति के कुछ पद, मुल्ला दाउद की चंदायन, अमीर खुसरो के कुछ छंद तथा रोडा की 'राउलबेलि' आदि प्रमुख स्रोत माने गए हैं। प्रायः विद्वानों में इस बात पर सहमति है कि रोडा कृत 'राउलबेलि' इस भाषा का मूल स्रोत है जबकि शेष रचनाएँ कुछ अपवादों के साथ पुरानी या आरंभिक हिन्दी में शामिल हो सकती हैं।

1. ध्वनि संबंधी विशेषताएँ

(क) आरंभिक हिन्दी में **निम्नलिखित स्वर** मिलते हैं -
ह्रस्व - अ, इ, उ, ऍ, ऑ
दीर्घ - आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ
ऐ, औ का विकास अवहट्ट में हो गया था, पर अब ये ध्वनियाँ प्रयोग में और व्यापक हो गईं, जैसे-
मउर > मौर चखइ > चखै

(ख) सभी शब्द **स्वरांत** होने लगे। संस्कृत के व्यंजनांत शब्दों की परंपरा का ह्रास पालि-प्राकृत से ही आरंभ हो गया था, यहाँ आकर तो वह परंपरा लगभग लुप्त ही हो गई।

(ग) **ऋ** के स्थान पर अ, इ, उ, रि आदि ध्वनियाँ पहले से ही विकसित हो रही थीं। अब इनके बहुत से उदाहरण दिखाई देने लगे, जैसे-
वृद्ध > बुड्ढो मृत्यु > मीचु अमृत > अमिय

(घ) कुछ शब्दों में **स्वरों का ह्रस्वीकरण** हो गया, जैसे -
दीपावली > दिवारी आनंद > अनंद

(ङ) कुछ शब्दों में **स्वरों का दीर्घीकरण** होने लगा, जैसे -
मनुष्य > मानुख चित्र > चीत मित्र > मीत

(च) कई शब्दों में **स्वर-परिवर्तन** की घटनाएँ दिखाई देती हैं, जैसे-
दिवस > देवस नूपुर > नेउर शय्या > सेज

(छ) आमतौर पर शब्द **उकारांत** होने लगे। इसीलिए पुरानी हिन्दी को प्रायः **उकारबहुला भाषा** माना गया है, जैसे-
पापु, लेहु, कछु

(ज) कहीं-कहीं **अनुनासिकीकरण** के उदाहरण दिखाई देते हैं-
छाया > छाँह नग्न > नंग

अध्याय
9 अपभ्रंश, अवहट्ट और पुरानी हिन्दी- तुलनात्मक अध्ययन

तुलना का आधार	अपभ्रंश	अवहट्ट	पुरानी हिन्दी
कालगत अन्तर	7वीं से 9वीं शताब्दी (लगभग)	9वीं से 11 शताब्दी (लगभग)	12वीं से 14वीं शताब्दी (लगभग)
ध्वनियों का अन्तर			
(क) ऐ, औ का प्रयोग	ऐ और औ का अभाव	ऐ और औ मिलने लगते हैं, यथा बैल, चौड़ा	ऐ और औ का अत्यधिक प्रयोग हुआ है, यथा मौर, चखै
(ख) ऋ का प्रयोग	ऋ का अ, इ, उ, ए में परिवर्तन होता है, जैसे- कृष्ण > कण्ह, ऋण > रिण, गृह > गेह	इसी प्रवृत्ति का और विकास हुआ।	विकास की यही प्रक्रिय चलती रही।
(ग) अनुनासिकता	अनुनासिकीकरण एवं निरनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति दिखती है, जैसे- चलहि > चलहिं (अनुनासिकीकरण) अश्रु > अंसु (अनुनासिकीकरण) सिंह > सीह (निरनुनासिकीकरण) विंशति > वीस (निरनुनासिकीकरण)	केवल अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति	अनुनासिकीकरण की प्रवृत्ति बनी हुई है किन्तु कम मात्रा में।
(घ) स्वरभक्ति (व्यंजन-संयोग को सरल बनाने के लिए व्यंजनों के मध्य स्वर लाने की प्रक्रिया)	अपभ्रंश में दिखाई देने लगती है, जैसे- उदाहरण - क्रिया > किरिया	अधिक मात्रा में मिलती है।	और अधिक मात्रा में मिलने लगती है।
(ड़) स्वर संयोग (जहाँ दो स्वर एक साथ हों)	स्वर संयोग की प्रक्रिया काफी मात्रा में दिखाई देती है, जैसे- अंधकार > अंधआर	स्वर संयोग से शब्दों का समझने में कठिनाई पैदा होने लगी जिससे स्वरगुच्छों में संकोच की प्रवृत्ति पैदा हुई, जैसे - अंधआर > अंधार	कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं दिखाई देती।
(च) स्वरलोप (स्वर का समाप्त हो जाना)	आरम्भिक व अन्त्य स्वरों के लुप्त होने की प्रवृत्ति है, जैसे- लज्जा > लाज, अरण्य > रण्ण	विशेषरूप से स्त्रीलिंग आकारान्त शब्दों के अन्तिम 'आ' का 'अ' हो जाना, जैसे- शिक्षा > सीख, भिक्षा > भीख	कोई विशेष प्रवृत्ति नहीं।
(छ) द्वित्वीकरण व दीर्घीकरण की प्रवृत्ति	संयुक्त व्यंजनों के स्थान पर द्वित्वीकरण करने की प्रवृत्ति दिखती है जैसे- चक्र > चक्क, कर्म > कम्म	क्षतिपूरक दीर्घीकरण का आरंभ होता है, जैसे- कम्म > काम, धम्म > धाम	क्षतिपूरक दीर्घीकरण का और अधिक विकास।
(ज) व्यंजनों का प्रयोग	इसमें निम्नलिखित सात व्यंजनों का अभाव है- ड़, ढ़, न, श, ष	ड़, ढ़ का विकास हुआ परन्तु शेष का नहीं।	श, ष का विकास नहीं हुआ, शेष पाँच व्यंजनों का विकास हुआ।

अध्याय
10

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश/अवहट्ट का योगदान

अपभ्रंश प्राचीन आर्यभाषा संस्कृत तथा आधुनिक आर्यभाषा हिन्दी के बीच की कड़ी है। इस दृष्टि से यह स्वाभाविक है कि आधुनिक हिन्दी की सारी मूलभूत विशेषताएँ अपभ्रंश पर ही आधारित हैं। वस्तुत: ध्वनि संरचना, व्याकरणिक संरचना, शब्द भंडार तथा साहित्यिक प्रवृत्तियाँ – किसी भी आधार पर हम अपभ्रंश के अभाव में आधुनिक हिन्दी की कल्पना नहीं कर सकते।

हिन्दी के विकास में अपभ्रंश के योगदान को विशेष रूप से दो प्रमुख स्तरों पर समझा जा सकता है- (क) भाषा के स्तर पर, (ख) साहित्य के स्तर पर।

10.1 हिन्दी भाषा को अपभ्रंश का योगदान

(क) मूल प्रवृत्ति

किसी भी भाषा का विकास प्राय: संयोगात्मक से वियोगात्मक रूप की ओर होता है। संयोगात्मक भाषा में प्राय: कारकीय विभक्तियाँ या प्रत्यय प्रातिपदिक में ही शामिल होते हैं जबकि वियोगात्मक भाषा में ये सभी पक्ष अलग-अलग होने लगते हैं। संस्कृत एक संयोगात्मक भाषा थी जबकि हिन्दी एक वियोगात्मक भाषा है। वियोगात्मकता की यह प्रवृत्ति हिन्दी को मूलत: अपभ्रंश से ही मिली है।

(ख) ध्वनि संरचना

ध्वनि संरचना के स्तर पर हिन्दी ने संस्कृत की जटिल ध्वनियों को प्राय: अस्वीकार किया है तथा संस्कृत से भिन्न कुछ सहज ध्वनियों को स्वीकार किया है। ये सारी प्रक्रियाएँ आमतौर पर अपभ्रंश काल में ही पूरी हुई थीं, जैसे-

(अ) संस्कृत की **दीर्घ ऋ (ॠ), ह्रस्व ऌ** और **दीर्घ ऌ** जैसी ध्वनियाँ अपभ्रंश में ही लुप्त हो गयी थीं, ये हिन्दी में भी नहीं हैं।

(आ) **ह्रस्व ऋ** का विकास हिन्दी में अ, इ, उ, ए तथा रि के रूप में हुआ है (तत्सम शब्दों को छोड़कर), यह प्रवृत्ति भी अपभ्रंश की ही देन है, जैसे-

कृष्ण > किशन मातृ > मात

(इ) संस्कृत के आरंभिक तथा अन्तिम **हलन्त व्यंजनों** का अपभ्रंश में प्राय: अभाव होता रहा। यह स्थिति हिन्दी में भी बनी हुई है, जैसे-

जगत् > जग महान् > महा स्रोत > सोता घृत > घी

(ई) ट वर्ग में **ड़** और **ढ़** – ये दो ध्वनियाँ अपभ्रंश में पहली बार विकसित हुई थीं। ये ध्वनियाँ सीधे-सीधे अपभ्रंश की हिन्दी को देन हैं, जैसे-

ड़ > लड़का, भेड़िया इत्यादि

ढ़ > बढ़िया, कढ़ाई इत्यादि

(उ) अपभ्रंश में संस्कृत की कुछ ध्वनियों के रूप परिवर्तित होने लगे थे, जैसे – श/ष का स, क्ष का छ/ष, त्र का त इत्यादि। ये रूप आधुनिक हिन्दी तक भी प्राय: बने रहे हैं। उदाहरण के लिए-

पक्ष > पंख मित्र > मीत साक्षी > साखी

(ऊ) नासिक्य व्यंजनों (ङ, ञ, ण, न, म) के जटिल संयोग को सरल बनाने के लिए अपभ्रंश में **अनुस्वार** के प्रयोग की परंपरा आरंभ हुई जो आज तक चलती आयी है जैसे-

गङ्गा > गंगा नीलकण्ठ > नीलकंठ प्रत्यञ्चा > प्रत्यंचा

अध्याय
11 मध्यकाल में अवधी का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

11.1 भौगोलिक परिचय

अवधी भाषा, जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र से संबंधित है। उत्तर प्रदेश के अंतर्गत जो क्षेत्र लखनऊ-फैजाबाद के आसपास का है, उसे ही अवध कहा जाता है। इसका क्षेत्र लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, लखीमपुर खीरी, सीतापुर, गोण्डा, बहराइच, प्रतापगढ़, सुल्तानपुर, बाराबंकी, फैजाबाद, फतेहपुर आदि जिलों को मिलाकर निर्मित होता है। इसे 'पूर्वी' कोसली, बैसवाड़ी आदि उपनामों से भी जाना जाता है। 'अवध' शब्द अयोध्या से निकला है- ऐसा प्रायः सभी भाषा वैज्ञानिक मानते हैं। अयोध्या के रूप में जो नगर विख्यात है, वह भी इसी भाषा क्षेत्र के केंद्र में स्थित है।

11.2 अवधी भाषा का उद्भव व स्रोत

अवधी भाषा के उद्गम को लेकर भाषाविदों में विवाद की स्थिति है। दरअसल, जिस काल में मध्यकालीन आर्यभाषाएँ जन्म ले रही थीं, उस आरंभिक काल (पालि-प्राकृत काल) में पूर्वी उत्तर प्रदेश का यह क्षेत्र 'कोसल' के नाम से विख्यात था। बौद्ध साहित्य व जैन ग्रंथों में भी कोसल प्रदेश का ज़िक्र कई स्थानों पर किया गया है। इस क्षेत्र में ईसापूर्व दो सौ वर्ष से लेकर ईसा की दूसरी शताब्दी तक अर्धमागधी प्राकृत ने जनभाषा का स्वरूप ग्रहण किया। इसी प्रक्रिया में जो जनभाषाएँ विकसित हुईं, उनमें से एक का नाम कोसली पड़ा। अपभ्रंश-अवहट्ट काल (छठी से बारहवीं सदी) के मध्य जब आधुनिक आर्यभाषाओं के जन्म की पूर्वपीठिका बनी, तब यही कोसली अथवा उसकी कोई समकालीन समीपवर्ती लोकभाषा स्थिर और स्पष्ट होकर अवधी के उद्गम का आधार बन गई। इस संबंध में अभी तक कोई प्रामाणिक बात तो नहीं कही जा सकती है, पर प्रायः यह संभावना व्यक्त की जाती है कि कोसली का आधुनिक रूप ही अवधी है।

भाषा के रूप में अवधी का पहला स्पष्ट उल्लेख अमीर खुसरो की रचना 'खालिकबारी' में मिलता है। इस रचना में खुसरो ने अपने समय की भारतीय भाषाओं का ज़िक्र करते हुए 'अवधी' का स्पष्ट उल्लेख किया है। खुसरो का काल 1253-1325 ई. माना जाता है, अतः स्पष्ट है कि अवधी एक भाषा के रूप में 13वीं शती के अंत में संभवतः स्थापित हो चुकी थी। इससे पूर्व भी रोडा कृत 'राउलबेल' में कन्नौज की नायिका के वर्णन के प्रसंग में तथा दामोदर पंडित कृत 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' में अवधी भाषा के निर्माणकालीन स्वरूप का परिचय होता है, पर इन दोनों रचनाओं का काल प्रामाणिक रूप से ज्ञात नहीं है।

11.3 सूफी काव्यधारा में अवधी का विकास

साहित्यिक भाषा के रूप में अवधी के तीव्र विकास का संबंध एक सुयोग से है। भारत की विभिन्न लोकभाषाओं में संस्कृत परंपरा से ही विकसित प्रेमकथाओं को रचने की प्रवृत्ति काफी अधिक व्याप्त थी। ऐसी प्रेमकथाओं में उर्वशी-पुरुरवा आख्यान, उषा-अनिरुद्ध कथा, मालती-माधव कथा आदि काफी प्रचलित थीं। चौदहवीं शती में सुयोग यह हुआ कि इन प्रेमाख्यानों के लिए अवधी भाषा और दोहा-चौपाई शैली रूढ़ सी हो गई। यह सुयोग होने का मूल कारण यह था कि पूर्वी उत्तर भारत में रहने वाले सूफी-प्रेमाश्रयी संतों ने अपने रहस्यवादी सिद्धांतों की अभिव्यक्ति भारत में पूर्णतः प्रचलित प्रेमाख्यानों के माध्यम से करनी आरंभ की। इस सुयोग ने अवधी को हिन्दी देश की सभी लोकभाषाओं में शिरोमणि बना दिया।

पहली रचना, जो संपूर्णतः अवधी में है और जिसने अवधी को एक झटके में लोकभाषा के पद से उठाकर साहित्यिक भाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई, **मुल्ला दाउद** की **'चन्दायन'** या **'लोरिकहा'** है। इस रचना में ठेठ अवधी का प्रयोग किया गया है। लोकभाषा कितनी मधुर हो सकती है, इसका प्रमाण चंदायन है। कवि स्वयं 'चंदायन' के प्रभाव के संबंध में कहता है-

अध्याय
12 मध्यकाल में ब्रजभाषा का साहित्यिक भाषा के रूप में विकास

12.1 परिचय

हिन्दी परिवार की जिस बोली को हम ब्रजभाषा के नाम से जानते हैं, उसका संबंध ब्रजमंडल या ब्रज प्रदेश से है जिसके अंतर्गत मथुरा, अलीगढ़, आगरा, बदायूँ तथा बरेली सहित आसपास का काफी बड़ा क्षेत्र शामिल हो जाता है। इस भाषा का विकास पुरानी हिन्दी के आसपास से ही किसी न किसी मात्रा और रूप में दिखाई देने लगता है, हालांकि काव्यभाषा के रूप में इसका तीव्र विकास भक्तिकाल के उत्तरार्द्ध में हुआ। ब्रजभाषा के विकास को चार चरणों में विभाजित करके समझा जा सकता है-

(क) सूरपूर्व युग (ख) सूरदास का युग (ग) रीतिकाल (घ) रीतिकाल पश्चात् युग।

12.2 सूरपूर्व युग की ब्रजभाषा

ब्रजभाषा शब्द का उल्लेख यद्यपि 16वीं शताब्दी में पहली बार हुआ तथापि किसी न किसी रूप में इसकी भाषिक प्रवृत्तियाँ पहले भी दिखाई देती हैं। इसके विकास का पहला चरण वह है जिसमें अन्य सभी आधुनिक बोलियों की तरह ब्रजभाषा भी पुरानी हिन्दी से विकसित हो रही थी। ब्रजभाषा का विकास शौरसेनी अपभ्रंश से माना गया है। आरंभिक काल में ब्रजभाषा का मिश्रित रूप 'प्राकृत पैंगलम्' तथा 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' आदि रचनाओं में थोड़ा बहुत दिखता है। पृथ्वीराज रासो के प्रामाणिक अंशों की भाषा भी ब्रजभाषा से मिलती जुलती प्रतीत होती है। ब्रजभाषा का आरंभिक मिश्रित रूप नाथयोगी 'जलंधरनाथ' द्वारा रचित इस पद में देखा जा सकता है-

"जोगी सोई जाणिये जग तैं रहे उदास।
तत निरन्जण पाइयै कहै मछन्दरनाथ।।"

ब्रज भाषा का पहला स्वतंत्र प्रयोग करने का श्रेय आदिकालीन कवि अमीर खुसरो को दिया जा सकता है। यद्यपि उनकी भाषा में फारसी, खड़ी बोली और अवधी तीनों भाषिक परंपराएँ मिलती हैं, पर निश्चित रूप से उनकी रचनाओं में ऐसे कई उदाहरण हैं जो ब्रजभाषा के मधुर रूप का आभास कराते हैं। उदाहरण के लिए खुसरो की निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

"खुसरो रैन सुहाग की, जागी पी के संग।
तन मेरो मन पीउ को, दोउ भए एक रंग।"
"मेरा मोसे सिंगार करावत, आगे बैठ के मान बढ़ावत।
वासे चिक्कन न कोऊ दीसा,
क्यों सखि, साजन, ना सखि सीसा।"

सूरदास के आगमन से पहले कुछ और कवि ब्रजभाषा का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं। उदाहरण के लिए सुधीर अग्रवाल ने 1354 ई. में 'प्रद्युम्न चरित्र' की रचना की, महाराष्ट्र के संत नामदेव ने कुछ पदों की रचना की, विष्णुदास ने 'रुक्मिणी मंगल' तथा शेष रचनाओं को प्रस्तुत किया तथा सिखों के पहले गुरु नानकदेव से लेकर पाँचवें गुरु अर्जुनदेव तक सभी ने ब्रजभाषा की अलग-अलग शैलियों का प्रयोग किया। उदाहरण के लिए गुरू अर्जुनदेव की भाषा पंजाबी मिश्रित ब्रजभाषा कही जा सकती है, जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है-

"जनम जनम का बिछुड़िया मिलिआ,
साध क्रिया ते सूखा हरिआ।"

अध्याय
13

खड़ी बोली

13.1 खड़ी बोली का नामकरण

जिस बोली को वर्तमान काल में खड़ी बोली कहा जाता है, उसका असली नाम कौरवी या देहलवी माना जाता है। यह बोली मूलत: कुरू प्रदेश की बोली है जिसके अन्तर्गत दिल्ली, आगरा, मेरठ, पानीपत, अम्बाला आदि के बीच का क्षेत्र शामिल है। यह भाषा पुरानी हिन्दी के बाद से ही इस पूरे क्षेत्र की जनबोली रही है। चूँकि बाहरी देशों से आये आक्रमणकारियों का संबंध मूलत: इसी प्रदेश से रहा, अत: धीरे-धीरे व्यावहारिक कारणों से इस बोली को समझना उनके लिए आवश्यक होता गया। दिल्ली सल्तनत की स्थापना के बाद स्वाभाविक रूप से यह बोली व्यापक होती गयी तथा इस पर कुछ फारसी प्रभाव भी पड़ने लगे। इसी बोली की अलग-अलग शैलियों को हिन्दुई, हिन्दुस्तानी, रेख्ता, उर्दू तथा दक्खिनी हिन्दी के नाम से जाना गया। ये सारी शैलियाँ मूलत: कौरवी के ढाँचे पर ही आधारित हैं, इनमें अन्तर मात्र शब्दों के अनुपात का है।

इसी कौरवी बोली को संभवत: उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ में पहली बार खड़ी बोली नाम से अभिहित किया गया। खड़ी बोली में खड़ी शब्द के संबंध में भाषा वैज्ञानिकों में पर्याप्त विवाद की स्थिति है। विभिन्न भाषा वैज्ञानिकों के प्रमुख मत इस प्रकार हैं-

(क) **डॉक्टर धीरेन्द्र वर्मा** का मानना है कि खड़ी शब्द कठोरता का द्योतक है। इसका प्रयोग इसलिए करना पड़ा कि ब्रजभाषा की कोमल प्रकृति से खड़ी बोली का अन्तर स्पष्टत: दिखाया जा सके।

(ख) **गार्सा द तासी** तथा **डॉ. चंद्रबली पाण्डेय** का मानना है कि खड़ी का संबंध खरी या शुद्ध से है। उनके अनुसार यह नाम इसलिए देना पड़ा कि इसे अरबी-फारसी से प्रभावित रेख्ता या उर्दू शैली से अलग रूप में प्रस्तुत किया जा सके।

(ग) **टी ग्राहम बेली** ने स्पष्ट किया कि खड़ी शब्द अंग्रेजी के स्टैण्डिंग (Standing) शब्द का अनुवाद है। अंग्रेजी में इसका अर्थ होता है मानक तथा परिष्कृत भाषा (Standard language)।

(घ) **सुनीति कुमार चटर्जी** का मानना है कि इस बोली को खड़ी बोली इसलिए कहना पड़ा कि यह अकारान्त या आकारान्त बोली है जबकि ब्रज, कन्नौजी और बुन्देलखण्डी जैसी पश्चिमी उपभाषा की अन्य बोलियाँ प्राय: ओकारान्त या इकारान्त हैं। अत: खड़ी पाई के अधिक प्रयोग के ही कारण यह 'खड़ी बोली' कहलाई।

इन सभी मतों में से यद्यपि किसी एक मत को पूर्णत: स्वीकार करना सम्भव नहीं है तथापि ऐसा लगता है कि खड़ी शब्द का संबंध खरी से हो सकता है। इसके दो कारण हैं। पहला यह कि र का ड़ के रूप में उच्चरित होना इस बोली के अपने स्वभाव के अनुकूल है तथा दूसरा यह कि हिन्दी की प्राय: सभी पूर्ववर्ती भाषाओं का नामकरण किसी न किसी गुणवाचक विशेषण के रूप में हुआ है। जिस तरह 'संस्कृत' का अर्थ 'संस्कारित भाषा' से है, 'पालि' का अर्थ 'पंक्तिबद्ध भाषा' से है, 'प्राकृत' का अर्थ 'जनभाषा' से है, 'अपभ्रंश' का अर्थ 'भ्रष्ट या संस्कारहीन भाषा' से है, उसी तरह खड़ी बोली नामकरण भी किसी गुण पर आधारित होना चाहिए। यह संयोग नहीं है कि लल्लू जी लाल की रचना 'प्रेमसागर' में, जिसमें पहली बार खड़ी बोली शब्द का प्रयोग हुआ है, इसका अर्थ "Pure Hindi" किया गया है।

समग्र रूप में यह कहा जा सकता है कि खड़ी बोली नामकरण का संबंध बोली के खरेपन से है। यह बोली जो कौरवी के नाम से आरंभ से प्रचलित थी, 1801 ईस्वी में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना के साथ ही खड़ी बोली के नाम से प्रसिद्ध होने लगी।

13.2 19वीं शताब्दी से पूर्व खड़ी बोली का विकास

वर्तमान समय में जिसे हम मानक हिन्दी के रूप में जानते हैं वह वस्तुत: हिन्दी की एक बोली खड़ी बोली का ही कुछ परिवर्तित रूप है। इस बोली के संबंध में प्राय: यह भ्रम रहा है कि इसका साहित्यिक भाषा के रूप में विकास अवधी

अध्याय
14

भाषा, उपभाषा, काव्यभाषा तथा बोली

14.1 भाषा और बोली में अंतर

वास्तविक रूप में ऐसी कोई भी निश्चयात्मक कसौटी नहीं है जिसके आधार पर भाषा और बोली में अंतर बताया जा सके। कुछ विद्वानों ने यहाँ तक कहा है कि भाषा और बोली का अंतर मूल रूप से 'भाषावैज्ञानिक' नहीं, बल्कि 'समाजभाषावैज्ञानिक' (Sociolinguistic) है। इसका अर्थ यह हुआ कि भाषा और बोली के अंतर वस्तुत: न तो शाब्दिक स्तर पर हैं, और न ही व्याकरणिक स्तर पर, इनका मूल अंतर तो सामाजिक स्थितियों का है। जब कोई बोली कुछ विशेष सामाजिक या राजनीतिक कारणों से अपनी अन्य सहयोगी बोलियों में प्रमुख स्थान प्राप्त कर लेती है, विभिन्न बोलियों के बीच संपर्क सूत्र का दायित्व निभाने लगती है, साहित्य और शासन की मान्य भाषा हो जाती है तो वही बोली 'भाषा' कहलाने लगती है। कभी-कभी यह भी हो सकता है कि कोई बोली कुछ समय तक भाषा के पद पर रहने के बाद अपनी ही किसी सहायक बोली के अधीन हो जाए। उदाहरण के लिए मध्यकाल में अवधी और ब्रजभाषा भाषा के रूप में प्रचलित रहीं किंतु आधुनिक काल में खड़ी बोली के विकास के बाद वे बोली के स्तर पर आ गईं। इसका कारण भी मूलत: उन स्थितियों में था जिनके संयोग के कारण खड़ी बोली को मानक भाषा बनने का अवसर प्राप्त हुआ।

यद्यपि भाषा और बोली के अंतर मूलत: सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों के हैं, तब भी भाषा के वैज्ञानिक अध्ययन के लिए आवश्यक हो जाता है कि भाषा और बोली का यथासंभव निश्चित स्वरूप तय किया जाए। इस दृष्टि से भाषा और बोली में निम्नलिखित अंतर माने जा सकते हैं-

(क) भाषा और बोली का सबसे व्यावहारिक अंतर उनकी **बोधगम्यता** का है। यदि दो लोग अपने-अपने क्षेत्रों की बोली बोलें और एक-दूसरे की बात को वे पूरा या अधूरा समझ सकें तो मानना होगा कि वे एक ही भाषा की दो बोलियों का प्रयोग कर रहे हैं। इसके विपरीत यदि वे अलग-अलग भाषाओं का प्रयोग करेंगे तो प्राय: एक-दूसरे की बात नहीं समझ सकेंगे।

(ख) भाषा का **भौगोलिक क्षेत्र** प्राय: विस्तृत होता है जबकि बोली का सीमित। इसका मूल कारण यह है कि आमतौर पर बोली केवल अपने अंचल में प्रयुक्त होती है, जबकि भाषा अपने अंचल विशेष के साथ-साथ विभिन्न अंचलों के बीच संपर्क सेतु का काम भी करती है।

(ग) भाषा **भाषिक विकास** की दृष्टि से बोली की तुलना में अधिक विकसित होती है। मानकता तथा व्यापकता प्राप्त करने के कारण भाषा का विकास तेजी से होने लगता है। वह नए-नए भौगोलिक तथा वैचारिक क्षेत्रों में प्रयुक्त होने लगती है और इस प्रकार विकास का उच्च स्तर प्राप्त करती है। इसके विपरीत बोली भाषिक विकास की दृष्टि से प्रारंभिक अवस्था में होती है जिसका मूल संबंध केवल जन प्रयोग से है।

(घ) भाषा का प्राय: एक **निश्चित व्याकरण** होता है जबकि बोली का व्याकरण निश्चित नहीं होता। इस कारण प्राय: ऐसा देखने में आता है कि भाषा के संबंध में शुद्धता का ध्यान रखा जाता है जबकि बोली में शुद्धता या अशुद्धता की चिंता नहीं की जाती।

(ङ) भाषा आमतौर पर अपने अंचल तथा उससे बाहर भी प्राय: **निश्चित और मानक रूप** में मिलती है जबकि बोली अपने अंचल के भीतर भी अलग-अलग वर्ग तथा क्षेत्र के अनुसार भिन्न-भिन्न रूपों में प्रयुक्त होती है।

(च) भाषा की प्राय: एक **निश्चित लिपि** होती है और इस कारण उसका प्रयोग लिखित भाषा तथा मौखिक भाषा दोनों रूपों में होता है। इसके विपरीत बोली आमतौर पर मौखिक रूप में ही प्रयुक्त होती है।

(छ) भाषा और बोली में एक बड़ा अंतर यह भी है कि भाषा को **शासकीय मान्यता** प्राप्त होती है जबकि बोली को नहीं। कभी-कभी तो बोली के भाषा बनने का एकमात्र कारण भी शासकीय मान्यता की प्राप्ति होता है। उदाहरण के लिए, केवल शासकीय आदेश से उत्तरी चीन की एक बोली मण्डारिन पूरे चीन की भाषा बन गई थी।

अध्याय
15

राजभाषा, राष्ट्रभाषा एवं संपर्क भाषा

15.1 राजभाषा का तात्पर्य

भारत की स्वाधीनता प्राप्ति से पहले हिन्दी में 'राजभाषा' शब्द का प्रयोग प्रायः नहीं मिलता। सबसे पहले सन् 1949 ई0 में भारत के महान नेता श्री राजगोपालाचारी ने भारतीय संविधान सभा में 'नैशनल लैंग्वेज' (National Language) के समानान्तर 'स्टेट लैंग्वेज' (State Language) शब्द का प्रयोग इस उद्देश्य से किया कि 'राष्ट्रभाषा (National Language) और 'राजभाषा' (State Language) में अंतर रहे और दोनों के स्वरूप को अलगाने वाली विभेदक रेखा को समझा जा सके। संविधान सभा की कार्यवाही के हिन्दी-प्रारूप में 'स्टेट लैंग्वेज' (State Language) का हिन्दी-अनुवाद 'राजभाषा' किया गया और इस प्रकार पहली बार यह शब्द प्रयोग में आया। बाद में, संविधान का प्रारूप तैयार करते समय, 'स्टेट लैंग्वेज' (State Language) के स्थान पर 'ऑफिशियल लैंग्वेज' (Official Language) शब्द का प्रयोग अधिक उपयुक्त समझा गया और 'ऑफिशियल लैंग्वेज' का हिन्दी-अनुवाद 'राजभाषा' ही किया गया ('सरकारी' या 'कार्यालयी' भाषा नहीं)। इस परिप्रेक्ष्य में, 'राजभाषा' शब्द का तात्पर्य है - राजा (शासक) अथवा राज्य (सरकार) द्वारा प्राधिकृत भाषा। भारतीय लोकतंत्र में शासन या सरकार का गठन संविधान की प्रक्रिया के अंतर्गत होता है, अतः दूसरे शब्दों में 'राजभाषा' का तात्पर्य है - **संविधान द्वारा सरकारी कामकाज, प्रशासन, संसद और विधान-मंडलों तथा न्यायिक कार्यकलापों के लिए स्वीकृत भाषा।**

15.2 राष्ट्रभाषा

राष्ट्रभाषा से तात्पर्य किसी देश की उस भाषा से है जिसे वहाँ के अधिकांश लोग बोलते हैं तथा जिसके साथ उनका सांस्कृतिक तथा भावनात्मक जुड़ाव होता है। उदाहरण के लिए, जर्मनी की राष्ट्रभाषा जर्मन है, इंग्लैंड की इंग्लिश तथा फ्राँस की फ्रेंच।

भारत जैसे बहुभाषी राष्ट्रों के सामने संकट यह है कि वे किस भाषा को राष्ट्रभाषा कहें? यदि वे किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा देते हैं तो शेष भाषाओं के प्रयोक्ताओं को भेद-भाव महसूस होता है और अगर किसी भाषा को यह दर्जा नहीं दिया जाता है तो राष्ट्र की एकता की संभावनाएँ कमज़ोर हो जाती हैं।

स्वाधीनता संग्राम के दौरान लगभग सभी नेताओं ने आपसी सहमति से तय किया था कि हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है और उसी में स्वाधीनता संग्राम चलाया जाना चाहिए। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद इस विषय पर विवाद हुआ और तय किया गया कि किसी एक भाषा को राष्ट्रभाषा का दर्जा देने की बजाय भारत की सभी प्रमुख भाषाओं को राष्ट्रीय भाषाओं का दर्जा दिया जाना चाहिए। हिन्दी को भारत की संपर्क भाषा के तौर पर सम्मान दिया जाना चाहिए, न कि राष्ट्रभाषा कहकर विवादों को आमंत्रित किया जाना चाहिए।

15.3 संपर्क भाषा

स्वाधीनता प्राप्ति के बाद राजभाषा और राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त एक अन्य शब्द 'संपर्क भाषा' का प्रयोग हिन्दी के संबंध में अक्सर होने लगा है। ऐतिहासिक परिस्थितियों का विश्लेषण करते हुए इसे समझना बेहतर होगा।

अध्याय
16

राजभाषा हिन्दी

16.1 'राजभाषा' हिन्दी की संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के भाग 5,6 और 17 में राजभाषा-संबंधी उपबंध हैं। भाग 17 का शीर्षक 'राजभाषा' है। इस भाग में चार अध्याय हैं जो क्रमशः संघ की भाषा, प्रादेशिक भाषाओं, उच्चतम न्यायालय एवं उच्च न्यायालयों आदि की भाषा तथा विशेष निर्देशों से संबंधित हैं। ये चारों अध्याय अनुच्छेद 343 से 351 के अंतर्गत समाहित हैं। इनके अतिरिक्त, अनुच्छेद 120 तथा 210 में संसद एवं विधानमंडलों की भाषा के संबध में विवरण दिया गया है। राजभाषा संबंधी प्रावधान इस प्रकार हैं-

(क) संविधान के **अनुच्छेद 120 (1)** में कहा गया है- "संसद में कार्य हिन्दी में या अंग्रेजी में किया जाएगा।" आगे कहा गया है- *"यदि कोई व्यक्ति हिन्दी में या अंग्रेजी में विचार प्रकट करने में असमर्थ है तो लोकसभा का अध्यक्ष या राज्यसभा का सभापति उसे अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है।"* इसी प्रकार, अनुच्छेद 120 (2) में उपबन्ध है कि *"जब तक संसद विधि द्वारा कोई उपबन्ध न करे, तब तक संविधान के आरम्भ से पंद्रह वर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् 'या अंग्रेज़ी में' वाला अंश नहीं रहेगा।"* (अर्थात् 26 जनवरी, 1965 से संसद का कार्य केवल हिन्दी में होगा।)

(ख) संविधान के **अनुच्छेद 210** में कहा गया है - राज्य के विधान-मंडल में कार्य राज्य की राजभाषा या राजभाषाओं में या हिन्दी में या अंग्रेज़ी में किया जाएगा।" आगे कहा गया है कि विधानसभा का अध्यक्ष या विधान-परिषद का सभापति ऐसे किसी सदस्य को अपनी मातृभाषा में बोलने की अनुमति दे सकता है जो उपर्युक्त भाषाओं में से किसी में भी विचार प्रकट नहीं कर सकता।

(ग) संविधान के **अनुच्छेद 343** में कहा गया है- *"संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी।"* इसके अतिरिक्त *"संघ के शासकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले भारतीय अंकों का अंतर्राष्ट्रीय रूप होगा।"* इसी अनुच्छेद में यह भी संकेत किया गया है कि शासकीय प्रयोजनों के लिए अंग्रेजी भाषा का प्रयोग 15 वर्षों तक होता रहेगा।

(घ) संविधान के **अनुच्छेद 344** के अंतर्गत व्यवस्था की गई है कि संविधान के आरंभ के पाँच वर्ष बाद राष्ट्रपति एक आयोग गठित करेगा जो हिन्दी के प्रयोग के विस्तार पर सुझाव देगा, जैसे-किन कार्यों के लिए हिन्दी का प्रयोग किया जा सकता है, न्यायालयों में हिन्दी का प्रयोग कैसे बढ़ाया जा सकता है, अंग्रेज़ी का प्रयोग कहाँ व किस प्रकार सीमित किया जा सकता है आदि। इसी प्रकार का आयोग संविधान के आरंभ से 10 वर्षों के बाद भी गठित किया जाएगा। ये आयोग भारत की उन्नति की प्रक्रिया तथा अहिन्दी भाषी वर्गों के हितों को ध्यान में रखते हुए अनुशंसा करेंगे। आयोग की सिफारिशों पर संसद की एक विशेष समिति राष्ट्रपति को राय देगी। राष्ट्रपति पूरी रिपोर्ट या उसके कुछ अंशों को लागू करने के लिए निर्देश जारी कर सकेगा।

(ङ) **अनुच्छेद 345** के अनुसार किसी राज्य का विधान मंडल, विधि द्वारा, उस राज्य में प्रयुक्त होने वाली या किन्हीं अन्य भाषाओं को या हिन्दी को शासकीय प्रयोजनों के लिए स्वीकार कर सकेगा। यदि किसी राज्य का विधानमण्डल ऐसा नहीं कर पाएगा तो अंग्रेज़ी भाषा का प्रयोग यथावत किया जाता रहेगा।

(च) **अनुच्छेद 346** के अनुसार संघ द्वारा निर्धारित भाषा एक राज्य और दूसरे राज्य के बीच में तथा किसी राज्य और संघ की सरकार के बीच पत्र आदि की राजभाषा होगी। यदि दो या अधिक राज्य परस्पर हिन्दी भाषा को स्वीकार करना चाहें तो उसका प्रयोग किया जा सकेगा।

(छ) **अनुछेद 347** के अनुसार यदि किसी राज्य की जनसंख्या का पर्याप्त भाग यह चाहता हो कि उसके द्वारा बोली जानेवाली भाषा को उस राज्य में (दूसरी भाषा के रूप में) मान्यता दी जाए और इसके लिए लोकप्रिय मांग की जाए, तो राष्ट्रपति यह निर्देश दे सकेगा कि ऐसी भाषा को भी उस राज्य में सर्वत्र या उसके किसी भाग में ऐसे प्रयोजन के लिए जो वह विनिर्दिष्ट करे, शासकीय मान्यता दी जाए।

अध्याय
17

राष्ट्रभाषा हिन्दी

17.1 राष्ट्रभाषा की कसौटियाँ

हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने का प्रश्न मूलत: इस बात पर टिका है कि हम किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने के लिए कौन सी कसौटियाँ स्वीकारते हैं। विभिन्न भाषाविदों के विचारों को संश्लेषण करें तो किसी भाषा के राष्ट्रभाषा होने की निम्नलिखित कसौटियाँ मानी जा सकती हैं-

(क) वह भाषा देश के सभी या अधिकतम व्यक्तियों द्वारा बोली जा सकती हो।

(ख) उसे बोलने वाले देश के किसी एक हिस्से में नहीं बल्कि विभिन्न हिस्सों में हों ताकि वह भाषा पूरे देश में सम्पर्क सूत्र स्थापित करने में सक्षम हो सके।

(ग) वह भाषा राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत को धारण करने में सक्षम हो अर्थात् देश के विभिन्न सांस्कृतिक पक्षों की अभिव्यक्ति उसमें हो पाती हो।

(घ) उसका शब्द भंडार इतना व्यापक हो कि देश के विभिन्न हिस्सों में प्रचलित शब्दावली उसमें शामिल हो सके। उसमें यह प्रवृत्ति भी होनी चाहिए कि देश की भाषाओं के अन्य शब्दों को वह सहजतापूर्वक शामिल करे, न कि उनसे परहेज करे।

(ङ) उस भाषा का व्याकरण सरल होना चाहिए ताकि देश के अन्य हिस्सों के निवासी यदि उसे सीखना चाहें तो सीखने की प्रक्रिया कठिन न हो।

(च) उसकी ध्वनि संरचना व्यापक तथा लचीली होनी चाहिए। यदि अन्य भाषाओं की कुछ ध्वनियाँ उसमें प्रयुक्त न होती हों तो उन्हें स्वीकारने की क्षमता उसमें होनी चाहिए।

(छ) उसकी लिपि भी राष्ट्रीय लिपि होनी चाहिए अर्थात् ऐसी लिपि जिसमें देश की सभी भाषाओं में प्रयुक्त होने वाले ध्वनि संकेत लिखे जा सकते हों।

(ज) उस भाषा में साहित्य की रचना व्यापक तौर पर हुई हो तथा साहित्य देश के विभिन्न क्षेत्रों में रचा गया हो।

(झ) उस भाषा ने राष्ट्र के प्रमुख आंदोलनों में सक्रिय सहभागिता की हो अर्थात् सामाजिक विकास की प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई हो।

17.2 हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के तर्क

अब प्रश्न है कि क्या हिन्दी इस कसौटियों पर खरी उतरती है? ध्यानपूर्वक देखें तो प्राय: सभी कसौटियों पर हिन्दी की स्थिति मज़बूत है। हिन्दी के राष्ट्रभाषा होने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए जा सकते हैं-

(क) सबसे पहला तर्क लोकतांत्रिक तर्क है। हिन्दी भारत में सर्वाधिक जनसंख्या द्वारा प्रयुक्त होने वाली भाषा है। यह दस राज्यों में प्रथम भाषा है जो लगभग 42% जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। कुछ ऐसे राज्य हैं जहाँ अन्य आर्य भाषाएँ प्रचलित हैं जैसे बंगाल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, पंजाब, गुजरात इत्यादि। इन राज्यों की भाषाएँ हिन्दी की तरह संस्कृत से ही व्युत्पन्न हुई हैं इसलिए इन राज्यों के निवासी हिन्दी समझने में समस्या महसूस नहीं करते हैं। ऐसे लोगों की संख्या भारत की जनसंख्या में लगभग 30% है। इन 70-72% व्यक्तियों के अतिरिक्त शेष भारत में भी टूटी-फूटी हिन्दी बोली और समझी जाती है। उदाहरण के लिए कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और केरल जैसे राज्यों में हिन्दी कम से कम कामचलाऊ भाषा के तौर पर सहजता से प्रयुक्त होती है। भारत की कोई भी अन्य भाषा इस दृष्टि से हिन्दी से काफी पीछे है। बांग्ला और तेलुगू के प्रयोक्ताओं की संख्या हिन्दी के तुरंत बाद सर्वाधिक है, पर दोनों में से किसी के प्रयोक्ता (प्रथम भाषा के तौर पर) भारत की जनसंख्या में 10% भी नहीं हैं। इनका क्षेत्रगत विस्तार भी सीमित ही है। स्पष्ट है कि संख्या और क्षेत्रगत व्यापकता दोनों दृष्टियों से हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा का दर्जा मिल सकता है।

अध्याय
18

हिन्दी भाषा का मानकीकरण

18.1 मानक भाषा की धारणा

'मानक' का अभिप्राय है- आदर्श, श्रेष्ठ अथवा परिनिष्ठित। भाषा का जो रूप उस भाषा के प्रयोक्ताओं के अतिरिक्त अन्य भाषा-भाषियों के लिए आदर्श होता है, जिसके माध्यम से वे (अन्य भाषा-भाषी) उस भाषा को सीखते हैं, जिस भाषा-रूप का व्यवहार पत्राचार, शिक्षा, सरकारी कामकाज एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदान-प्रदान में समान स्तर पर होता है, वह उस भाषा का 'मानक' रूप कहलाता है। मानक भाषा की एक पहचान यह भी है कि उसका प्रयोग शिक्षित वर्ग द्वारा अपने सामाजिक, सांस्कृतिक, व्यापारिक, वैज्ञानिक तथा प्रशासनिक कार्यों में किया जाता है। मानक भाषा को 'किसी देश अथवा राज्य की प्रतिनिधि भाषा' भी कहा जाता है।

हर भाषा अपने आदि रूप में मात्र एक बोली होती है। उस बोली के प्रयोक्ताओं की राजनीतिक, सामाजिक-सांस्कृतिक और प्रशासनिक विकास-प्रक्रिया के साथ-साथ मात्र बोलचाल में प्रयुक्त होने वाली वह बोली भी धीरे-धीरे निखरकर विकसित हो जाती है, उसका व्याकरण निश्चित हो जाता है, उसे अधिकाधिक पत्राचार, शिक्षा, प्रशासन आदि का माध्यम बनने का अवसर मिलता है। तब वह 'बोली' न रहकर 'भाषा' का रूप ले लेती है। यही भाषा एक उच्च स्तर तक पहुँचकर ऐसा आदर्श रूप ले लेती है जिसे 'मानक' भाषा मान लिया जाता है। इस दृष्टि से, किसी भाषा का वह सर्वमान्य, व्याकरणसम्मत परिनिष्ठित रूप मानक भाषा कहलाता है जो विकास की प्रक्रिया से निखर कर अपने प्रयोक्ता- समुदाय के सभी क्षेत्रों का औपचारिक माध्यम बन जाता है।

18.2 भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया

'भाषा के मानकीकरण' का अभिप्राय है उसका 'बोली' रूप से क्रमशः विकसित होकर ऐसी 'परिनिष्ठित भाषा' का रूप धारण कर लेना जो धर्म, शिक्षा, साहित्य एवं प्रशासनिक कार्य-कलाप में सर्वमान्य माध्यम बन सके। भाषा का बोलचाल के स्तर से ऊपर उठकर, मानक रूप ग्रहण कर लेना ही उसका मानकीकरण है।

इस प्रक्रिया के तीन सोपान हैं। पहले स्तर पर भाषा का मूल रूप एक सीमित क्षेत्र में आपसी बोलचाल के रूप में प्रयुक्त होने वाली 'बोली' का होता है जिसे स्थानीय, आंचलिक अथवा क्षेत्रीय बोली कहा जा सकता है। इसका शब्द-भंडार सीमित होता है। इसका अपना नियमित व्याकरण या भाषा-शास्त्र नहीं होता। इसे शिक्षा, आधिकारिक कार्य-व्यवहार अथवा साहित्य का माध्यम नहीं बनाया जा सकता।

वही 'बोली' जब कुछ विशेष भौगोलिक, सामाजिक- सांस्कृतिक, राजनीतिक और प्रशासनिक कारणों से अपना क्षेत्र-विस्तार कर लेती है तो उसका लिखित रूप विकसित होने लगता है और वह व्याकरणिक साँचे में ढलने लगती है। उसके प्रयोक्ता उसे पत्राचार का माध्यम बना लेते हैं। शिक्षा, व्यवसाय और प्रशासन में उसका प्रयोग होने लगता है, उसका अपना साहित्य रचा जाता है; तब वह 'बोली' का चोला त्याग कर 'भाषा' की संज्ञा प्राप्त कर लेती है। यह किसी भाषा के मानकीकरण की प्रक्रिया का दूसरा सोपान है।

तीसरे स्तर पर पहुँचकर मानकीकरण की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। यह वह स्तर है जब भाषा का प्रयोग-क्षेत्र अत्यधिक विस्तृत हो जाता है। वह एक ऐसा 'आदर्श' रूप धारण कर लेती है जिसमें किसी बोली की गंध नहीं रहती। वह उसका परिनिष्ठित रूप होता है। उसकी अपनी शैक्षणिक, व्यावहारिक, वाणिज्यिक, साहित्यिक, शास्त्रीय, तकनीकी एवं कानूनी शब्दावली होती है। विभिन्न सामाजिक-सांस्कृतिक, शैक्षणिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में, भूगोल-इतिहास, व्याकरण आदि की पुस्तकों, साहित्य-कला और संचार-साधनों के स्तर पर उसका एक-सा सर्वमान्य रूप गृहीत होता है। ऐसी स्थिति में पहुँचकर भाषा 'मानक भाषा' बन जाती है। उसी को शुद्ध, उच्चस्तरीय, परिमार्जित आदि विशेषण भी दिये जाते हैं।

अध्याय
19

देवनागरी लिपि

19.1 'लिपि' की धारणा एवं महत्त्व

'लिपि' शब्द का अर्थ है - 'लिखावट'। हम 'भाषा' के रूप में जिन ध्वनियों का उच्चारण एवं शब्दों-वाक्यों आदि में प्रयोग करते हैं, वे श्रोताओं के कानों तक पहुँचने के बाद अस्तित्वहीन हो जाती हैं। उनकी सत्ता केवल 'श्रव्य' होने तक सीमित है। भाषा की उन्हीं ध्वनियों को 'दृश्य' रूप में सम्प्रेषण का माध्यम बनाने के लिए हम उन्हें कुछ विशेष 'आकृतियों' में - रेखाओं या चित्राकृतियों द्वारा प्रस्तुत करते हैं, तब वही भाषा 'लिपि' का रूप धारण कर लेती है। इस आधार पर हम कह सकते हैं कि "भाषा की सभी ध्वनियों के लिए निर्धारित प्रतीक-चिह्नों का सामूहिक नाम लिपि है।"

लिपि भाषा की हर एक व्यक्त ध्वनि को एक सुनिश्चित आकृति के रूप में प्रत्यक्ष कर देती है। इस प्रकार 'लिपि' भाषा का लिखित पर्याय ही है।

19.2 भाषा व लिपि का अंत:संबंध एवं अन्तर

'भाषा' व 'लिपि' दोनों में गहरा संबंध है। 'भाषा' और 'लिपि' दोनों में ध्वनि-संकेत प्रयोग में लाये जाते हैं। दोनों का मूलभूत आधार मानव-मुख से उच्चरित ध्वनियाँ हैं। इन दोनों में मुख्य अंतर निम्नलिखित हैं-

(i) भाषा में ध्वनियाँ 'श्रव्य' रूप में व्यक्त होती हैं, जबकि लिपि में वही ध्वनियाँ 'दृश्य' रूप ले लेती हैं। भाषा 'मौखिक' रहती है और 'लिपि' लिखित।

(ii) भाषा का क्षेत्र सीमित है और लिपि का विस्तृत। भाषा समय और स्थान के दायरे में बंधी रहती है। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास या कबीर-सूर-तुलसी ने जो कुछ गा-गाकर सुनाया, उसे केवल उनके समय में, उनके सामने उपस्थित लोग ही सुन पाये - जबकि 'लिपि' के द्वारा हम आज, हज़ारों वर्ष बाद भी, उनके काव्य का रसास्वादन कर रहे हैं। 'लिपि' समय और स्थान की सीमाओं को लांघकर हर युग में, हर समय में, हर स्थान पर पहुँच सकती है।

(iii) एक अन्य दृष्टि से भाषा लिपि की तुलना में अधिक व्यापक है। लिपि का संबंध केवल साक्षर जनता से ही बन पाता है जबकि भाषा का प्रयोग हर शिक्षित-अशिक्षित व्यक्ति समान रूप से कर सकता है। भारत जैसे देशों में, जहाँ लगभग आधी जनता पढ़ना-लिखना नहीं जानती, भाषा का महत्त्व अपने आप बढ़ जाता है।

(iv) 'लिपि' ही किसी 'भाषा' को उसके पूर्ण शुद्ध, मूल, वास्तविक रूप में सुरक्षित रखती है। सहस्रों वर्ष पुराना वैदिक, प्राकृत, अपभ्रंश साहित्य आज भी यदि अपने मूल रूप में हमें उपलब्ध है तो केवल 'लिपि' के कारण। विश्व भर में ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा-शास्त्र, प्रौद्योगिकी-तकनीक, शिक्षा, प्रशासन, न्याय-विधि, राजनीति, समाज, भूगोल, इतिहास, ज्योतिष, चिकित्सा आदि अनेकानेक विषयों की सामग्री 'लिपि' के माध्यम से उपलब्ध है। आज 'टंकण' और 'मुद्रण' की जो कला अधिकाधिक विकसित होकर हर समाज और देश के जीवन का एक अनिवार्य एवं अभिन्न अंग बनी हुई है, उसका मूल आधार भी 'लिपि' ही है। '

(v) लिपि का मूल आधार है - भाषा। वास्तव में, भाषा नींव है तो लिपि उसी आधार पर स्थापित भवन।

इस प्रकार, भाषा और लिपि में समानता और भिन्नता के विविध आयाम होते हुए भी दोनों का अन्योन्याश्रित संबंध स्पष्ट है। लिपि अपने अस्तित्व हेतु भाषा पर निर्भर है, जबकि भाषा अपने संरक्षण व प्रसार हेतु लिपि पर निर्भर है।

अध्याय
20

देवनागरी लिपि का मानकीकरण

20.1 देवनागरी लिपि के मानकीकरण के प्रयास

स्वाधीनता आंदोलन में हिन्दी को राष्ट्रभाषा का दर्जा प्राप्त होने के साथ ही देवनागरी लिपि के मानकीकरण का सवाल उठना शुरु हुआ। इस संबंध में कई वैयक्तिक और संस्थाबद्ध प्रयास हुए जिनकी संक्षिप्त चर्चा इस प्रकार है –

(क) वैयक्तिक प्रयास

(i) सबसे पहला प्रयास संभवत: बाल गंगाधर तिलक ने किया। उन्होंने अपने पत्र 'केसरी' के लिए एक फॉन्ट तैयार किया जिसे 'तिलक फॉन्ट' के रूप में प्रसिद्धि मिली। इस फॉन्ट में अनावश्यक संकेतों को काट-छाँट दिया गया और पूरी देवनागरी के लिए 190 टाइपों का फॉन्ट सामने आया।

(ii) 20वीं शताब्दी के आरंभ में ही जस्टिस शारदाचरण मित्र ने 'लिपि विस्तार परिषद' का निर्माण किया जिसका उद्देश्य सभी भारतीय भाषाओं के लिए एक लिपि का निर्माण करना था। देवनागरी में वे ऐसे सुधार करने के पक्ष में थे जिससे अन्य भारतीय भाषाओं के सारे संकेत भी इस लिपि में समाहित हो जाएँ।

(iii) 20वीं सदी के आरंभ में ही सावरकर बंधुओं ने स्वरों के लिए 'अ' की बारहखड़ी तैयार की। इसमें सारे स्वरों को 'अ' से ही मात्रा जोड़कर लिखा जाता था, जैसे – अी, अि, अे, अै, अु, अू आदि। यह प्रयोग महाराष्ट्र में काफी प्रचलित हुआ। महात्मा गांधी ने भी अपने पत्र 'हरिजन सेवक' में इस शैली का प्रयोग किया।

(iv) अन्य वैयक्तिक प्रयासों में काशी के श्रीनिवास का प्रयास महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने सुझाव दिया कि सारे महाप्राण व्यंजनों को हटा दिया जाए तथा अल्पप्राण व्यंजनों के नीचे 'S' का संकेत करके ही महाप्राण व्यंजनों को व्यक्त कर दिया जाए, जैसे – ?= भ, ?= ख।

(v) डॉ. गोरखनाथ का सुझाव भी इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण था। उन्होंने कहा कि मात्राओं के वर्णों के ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ होने से जो समस्या पैदा होती है, उसके निराकरण के लिए मात्राओं को वर्णों के बाद अलग से दाहिनी ओर लिख देना चाहिए, जैसे – द ी प ा (दीपा), म ै न ा (मैना) आदि।

(vi) डॉ. श्यामसुंदर दास ने 'अनुस्वार' के प्रयोग को व्यापक बनाकर देवनागरी को सरल बनाने का सुझाव दिया। विशेष रूप से ङ् तथा ञ के स्थान पर अनुस्वार का प्रयोग किया जाना चाहिये क्योंकि ये संकेत काफ़ी जटिल हैं। ऐसा करने से उच्चारण तो समान ही रहेगा, पर लिपि सरल हो जाएगी, जैसे –

गङ्गा – गंगा चञ्चल – चंचल

(ख) संस्थागत प्रयास

(i) संस्थागत प्रयासों में सबसे पहला प्रयास 1935 में **'हिन्दी साहित्य सम्मेलन'** की ओर से हुआ। सम्मेलन ने इस वर्ष महात्मा गांधी के सभापतित्व में 'नागरी लिपि सुधार समिति' बनाई जिसके संयोजक काका कालेलकर थे। समिति की प्रमुख सिफारिशें यह थीं –

(क) सावरकर बंधुओं द्वारा सुझायी गई बारहखड़ी को स्वीकार किया जाए।

(ख) ध और भ में गुजराती घुंडी लगाई जाए (ध, भ)।

(ग) व्यंजन संयोग में ऊपर नीचे की स्थिति को समाप्त कर दिया जाए। द्द, द्ध आदि के स्थान पर द्द, द्ध का प्रयोग हो।

(घ) शिरोरेखा लेखन में न रहे, पर मुद्रण में बनी रहे।

अध्याय
21

हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास

21.1 परिचय

वैज्ञानिक एवं तकनीकी विकास का संबंध भाषा के आधुनिकीकरण से है। 'भाषा' के आधुनिकीकरण के दो संदर्भ हैं- पहला यह कि भाषा आधुनिक प्रयोजनों के अनुकूल विकसित हो तथा दूसरा यह कि भाषा से संबंधित यांत्रिक साधनों का विकास हो। आमतौर पर यांत्रिक साधनों के विकास को तकनीकी विकास तथा भाषिक क्षमताओं के विकास को वैज्ञानिक विकास भी कहा जाता है।

भाषा आधुनिक वैज्ञानिक प्रयोजनों के लिये प्रयुक्त हो सके, इसकी कुछ शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि भाषा आधुनिक जीवन के सारे प्रसंगों को समाविष्ट करती हो। इसका अर्थ यह हुआ कि इन्टरनेट से लेकर मार्केट इकॉनमी तक जितनी स्थितियाँ हमारे सामने हैं, उन सबके लिये हमारी भाषा में सरल तथा सहज शब्द हों। दूसरी आवश्यकता इस बात की है कि आधुनिक प्रशासन तंत्र में जिन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करना आवश्यक होता है, उनका विकास हो। तीसरी बात यह है कि भाषा अपने सभी स्तरों पर मानकीकृत हो। इन स्तरों में ध्वनि, वर्ण, शब्द, वाक्य रचना, लिपि, वर्तनी तथा प्रोक्ति सम्मिलित हैं। इस विकास के स्तर को छूने वाली भाषा को वैज्ञानिक भाषा कहा जा सकता है।

21.2 हिन्दी का वैज्ञानिक विकास

हिन्दी के संदर्भ में विचार करें तो पिछले कुछ दशकों में हिन्दी के वैज्ञानिक विकास पर काफी ध्यान दिया गया है। यह मुख्यत: चार स्तरों पर दिखता है-

1. मानकीकरण के प्रयास
2. पारिभाषिक शब्दावली का विकास
3. अनुवाद कार्य की प्रगति
4. हिन्दी के टंकण आदि से जुड़ी तकनीकों का विकास

मानकीकरण के प्रयास

मानकीकरण के प्रयास बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही दिखने लगते हैं तथा धीरे-धीरे हिन्दी का मानकीकरण सरकारी सहायता के साथ लगभग पूरा हो गया है। (मानकीकरण के संदर्भ में हिन्दी भाषा तथा देवनागरी लिपि के मानकीकरण के नोट्स संलग्न हैं। उन्हीं के प्रमुख बिन्दुओं को यहाँ प्रस्तुत करें।)

पारिभाषिक शब्दों का विकास

भाषा के वैज्ञानिक विकास का दूसरा प्रमुख कार्य है पारिभाषिक शब्दों का विकास। इस संबंध में 1955 में राजभाषा आयोग की संस्तुतियों के आधार पर भारत सरकार ने दो आयोगों का गठन किया है- **वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग** तथा **विधायी (शब्दावली) आयोग। वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग** को विधि क्षेत्र को छोड़कर अन्य सभी विषयों के पारिभाषिक शब्दों के निर्माण का दायित्व सौंपा गया। **विधायी (शब्दावली) आयोग** का काम था कि विधि क्षेत्र में काम आने वाली सभी प्रयुक्तियों को वह हिन्दी में समतुल्य रूप में प्रस्तुत करे। यह दोनों आयोग अपनी क्षमता के अनुसार लगातार काम करते रहे हैं। **वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली** आयोग वर्तमान समय में शिक्षा मंत्रालय के अधीन कार्य कर रहा है तथा इसने विज्ञान, वाणिज्य तथा मानविकी क्षेत्रों से संबंधित कई विषयों की मानक शब्दावली तैयार की है। **विधायी (शब्दावली) आयोग,** जो कि अब विधि मंत्रालय के एक विभाग के रूप में काम कर रहा है, ने भी विधि क्षेत्र में पारिभाषिक शब्दावली का तीव्र विकास किया है। इस संबंध में एक समस्या यह आती है कि केन्द्र सरकार

अध्याय
22

पारिभाषिक शब्दावली की समस्या

22.1 पारिभाषिक शब्दावली का अर्थ

पारिभाषिक शब्दावली वह शब्दावली है जो किसी निश्चित क्षेत्र में प्रयुक्त होती है और जिसका अर्थ भी वस्तुनिष्ठ होता है। सामान्यत: इसकी तीन विशेषताएँ बतायी जाती हैं–

(1) पारिभाषिक शब्द अभिधार्थ में ही ग्रहण किये जाते हैं, लक्ष्यार्थ या व्यंग्यार्थ में नहीं। सामान्य भाषा में 'आशा की किरणें' या 'तुम उल्लू हो' जैसे वाक्यांशों में किरण एवं उल्लू शब्द का लाक्षणिक प्रयोग हुआ है किंतु भौतिकी में 'किरणें' सिर्फ प्रकाश तक सीमित हैं एवं प्राणिविज्ञान में 'उल्लू' एक विशिष्ट प्रजाति तक।

(2) विषय-सापेक्षता पारिभाषिक शब्दावली का अनिवार्य गुण है। हर पारिभाषिक शब्द किसी न किसी विषय विशेष में ही प्रयुक्त होता है, जैसे- 'मांग' एवं 'आपूर्ति' अर्थशास्त्र में; 'राज्य' व 'संप्रभुता' राजनीति विज्ञान में; 'अधिकारीतंत्र' लोक प्रशासन में एवं 'प्रस्थिति' समाजशास्त्र में प्रयुक्त होने वाले पारिभाषिक शब्द हैं।

(3) अर्थों का सूक्ष्मीकरण पारिभाषिक शब्दों की अनिवार्य विशेषता है क्योंकि ये शब्द किसी न किसी अत्यंत सूक्ष्म एवं निश्चित अर्थ को ही बताते हैं। उदाहरण के लिए ताप, गर्मी, ऊष्मा एवं ऊष्णता चारों शब्द परस्पर निकट होते हुए भी एक दूसरे से भिन्न हैं। यह इनकी पारिभाषिकता के कारण ही संभव होता है।

पारिभाषिक शब्दों का कुछ आधारों पर वर्गीकरण भी किया जा सकता है। पारिभाषिकता के स्तर के आधार पर दो प्रकार के शब्द होते हैं- **पूर्ण-पारिभाषिक** तथा **अर्ध-पारिभाषिक**। पूर्ण पारिभाषिक शब्द केवल तकनीकी संदर्भों में ही आते हैं जैसे- प्रजाति (species) या स्वनिम (phoneme)। इसके विपरीत अर्ध-पारिभाषिक शब्द वे हैं जो पारिभाषिक या गैर पारिभाषिक दोनों अर्थों में प्रयुक्त होने की क्षमता रखते हैं, जैसे- मांग, आत्मा, वनस्पति, संस्था, राज्य आदि। कुछ शब्द ऐसे भी हैं जो कभी-कभी गैर-तकनीकी संदर्भों में प्रयुक्त होते हैं तो कभी-कभी अर्ध-पारिभाषिक एवं पूर्ण पारिभाषिक संदर्भों में, जैसे- स्पीकर शब्द को यदि वक्ता के रूप में लें तो गैर-पारिभाषिक; यदि लोकसभा अध्यक्ष के रूप में लें तो पारिभाषिक; और यदि लाउडस्पीकर के रूप में लें तो अर्ध-पारिभाषिक है।

अर्थ-संप्रेषण की दृष्टि से भी पारिभाषिक शब्दों के दो वर्ग बनाये जाते हैं- **पारदर्शी शब्द** तथा **अपारदर्शी शब्द**। पारदर्शी शब्द वे हैं जिनका अर्थ शब्द से ही स्पष्ट हो जाता है, जैसे- राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, निजीकरण, भूमंडलीकरण। इनके विपरीत, अपारदर्शी शब्द वे हैं जिनका अर्थ शब्द से स्वत: स्पष्ट नहीं होता। उदाहरण के लिए, श्वेत पत्र, फारेनहाइट, वोल्टमीटर इत्यादि ऐसे ही शब्द हैं।

22.2 निर्माण के ऐतिहासिक प्रयास

भाषा के आधुनिकीकरण में एक मुख्य समस्या पारिभाषिक शब्दावली के विकास की है क्योंकि उसके बिना कोई भी भाषा विश्व के विकास स्तर के बराबर नहीं चल सकती। हिंदी की पारिभाषिक शब्दावली के निर्माण के लिए भी पर्याप्त प्रयास हुए हैं। सबसे पहले इतिहास में एक प्रसंग मिलता है कि मध्यकाल में **शिवाजी** के कहने पर **रघुनाथ पंत** ने राजकीय शब्दावली के निर्माण का प्रयास किया था। **वर्ष 1871** में तत्कालीन **बंगाल सरकार** ने एक समिति बनाई थी जिसे यह निश्चित करना था कि विज्ञान एवं विधि आदि क्षेत्रों के यूरोपीय भाषाओं के शब्द भारतीय भाषाओं (वर्नाक्युलर्स) में किस प्रकार रूपांतरित किये जाएँ। इस समिति के एक वरिष्ठ सदस्य राजेंद्रलाल मित्र ने 1877 ई० में इस समिति के निर्णय को प्रकाशित किया। इसके बाद 1898 ई० में **'काशी नागरी प्रचारिणी सभा'** ने इसी उद्देश्य से एक समिति नियुक्त की जिसकी बनायी हुई **'हिंदी साइंटिफिक ग्लॉसरी'** 1901 में प्रकाशित हुई। 20वीं शताब्दी के आरंभ में **नागरी प्रचारिणी सभा** एवं **हिंदी साहित्य सम्मेलन** जैसी संस्थाओं ने इस उद्देश्य के लिए पर्याप्त प्रयास किए। इसी समय में व्यक्तिगत स्तर पर सबसे

अध्याय
23

हिन्दी में वैज्ञानिक लेखन

वर्तमान में यह एक आम धारणा बन गयी है कि हिन्दी में वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकों के लिए आधारभूत सामग्री की कमी है और हिन्दी आदि भारतीय भाषाएँ आधुनिक ज्ञान-विज्ञान को अभिव्यक्त करने में असमर्थ हैं। वास्तव में यह धारणा निराधार, असत्य और भ्रामक है क्योंकि हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओँ में सब प्रकार की प्रगतिपरक संस्कृति तथा ज्ञान-विज्ञान को सहज और गहन दोनों रूपों में अभिव्यक्त और संप्रेषित करने की संपूर्ण क्षमता विद्यमान है।

साहित्य की ही भाँति वैज्ञानिक लेखन की भी भारत में सुदृढ़ परंपरा रही है और इस परंपरा को और आगे विकसित करने के लिए हिन्दी सहित सभी आधुनिक भारतीय भाषाओं ने आधुनिक विषयों और अनुसंधानों के अनुरूप अपने- अपने भाषाकोश का पर्याप्त विकास किया है तथा विकास की यह प्रक्रिया वैज्ञानिक जगत के विकास के साथ-साथ आज भी निरंतर चल रही है।

हिन्दी में वैज्ञानिक और तकनीकी लेखन की परंपरा लगभग दो सौ साल पुरानी है। वैज्ञानिक लेखन के लिए विशिष्ट पारिभाषिक शब्दावली की आवश्यकता को हिन्दी ने बहुत पहले पहचान लिया था। अब शब्दों को बनाने की उतनी ज़रूरत नहीं जितनी बनाए जा चुके शब्दों के प्रयोग की है। वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली आयोग आदि संस्थाओं ने लाखों की संख्या में विभिन्न विज्ञानों के शब्द बना डाले हैं और नित नए विषयों पर शब्द निर्माण का काम अनेक स्तरों पर चल रहा है। वर्तमान में आवश्यकता है कि विभिन्न विषयों के विद्वान और वैज्ञानिक इस देश के आम जन को ध्यान में रखकर राष्ट्रीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन में प्रवृत्त हों।

शुरुआत में खड़ीबोली में वैज्ञानिक विषयों पर पाठ्य पुस्तकें तैयार करने करने के लिए अंग्रेज़ी से आए वैज्ञानिक शब्दों के हिन्दी पर्याय तैयार करने की आवश्यकता हुयी होगी। इस आवश्यकता की पूर्ति हेतु खड़ीबोली में वैज्ञानिक शब्द संग्रह और पुस्तक रचना का काम साथ-साथ शुरू हुआ। तकनीकी विषयों पर लिखने वालों के लिए ऐसे शब्द संग्रह का प्रणयन लल्लूलाल जी ने किया। 1810 ई. में प्रकाशित उनके द्वारा संग्रहीत 3500 शब्दों की वह सूची अत्यंत महत्त्वपूर्ण है जिसमें हिन्दी की वैज्ञानिक शब्दावली को फ़ारसी और अंग्रेज़ी प्रतिरूपों के साथ प्रस्तुत किया गया है। शब्द-संग्रह के साथ ही पुस्तक लेखन का काम शुरू हुआ और 1847 में स्कूल बुक्स सोसाइटी, आगरा ने 'रसायन प्रकाश प्रश्नोत्तर' का प्रकाशन किया। विभिन्न वैज्ञानिक विषयों की पुस्तकें हिन्दी में तैयार करने का बहुत बड़ा काम कायस्थ राजकीय पाठशाला के गणित अध्यापक पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र ने किया। उनके संबंध में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'कवि वचन सुधा' (23 अगस्त 1873) में यह जानकारी दी है कि उन्होंने हिन्दी भाषा में 'सरल त्रिकोणमिति' उस समय तक प्रस्तुत कर दी थी और हिन्दी भाषा में गणित विद्या की पूरी श्रेणी बनाने के काम में जुट गए थे। वस्तुत: पं. लक्ष्मीशंकर मिश्र ने गणित, स्थिति विद्या, गति विद्या, वायुमंडल विज्ञान, प्राकृतिक भूगोल और पदार्थ विज्ञान जैसे विषयों पर पुस्तकें लिखकर हिन्दी के आरंभिक वैज्ञानिक लेखन को सुदृढ़ आधार प्रदान किया। आगे चलकर महामहोपाध्याय पं. सुधाकर द्विवेदी ने 'चलन कलन' तथा विशंभरनाथ शर्मा ने 'रसायन संग्रह' (1896, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता) की रचना की। ये सभी उदाहरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि तकनीकी विषयों की अभिव्यक्ति में हिन्दी आरंभ से समर्थ और सचेष्ट रही है।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में विभिन्न स्तरों पर आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के दौरान यह महसूस किया गया कि समाज में नवजागरण तभी संभव है जब भाग्यवादी अंधविश्वासों के स्थान पर तर्क और वैज्ञानिकता पर आधारित सोच का विकास किया जाय। समाज के मानस को वैज्ञानिक संस्कार देने के लिए, साइंटिफिक टेंपरामेंट विकसित करने के लिए, भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक लेखन को और अधिक मज़बूत किए जाने की ज़रूरत थी (और आज भी है।)। इस दृष्टि से साइंटिफिक सोसाइटी अलीगढ़, वाद विवाद क्लब बनारस, काशी नागरी प्रचारणी सभा वाराणसी, गुरुकुल कांगडी और विज्ञान परिषद इलाहाबाद जैसी संस्थाओं ने आंदोलनात्मक ढंग से काम किया और हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन को विस्तार दिया।

हिन्दी के वैज्ञानिक लेखन को इस बात से बड़ा बल मिला कि गुरुकुल कांगडी (1900) ने विज्ञान सहित सभी विषयों की शिक्षा के लिए हिन्दी को माध्यम बनाया और तदनुरूप 17 पुस्तकों का प्रणयन भी किया। यहाँ यह जानना रोचक होगा

अध्याय
24

भाषा खण्ड से संबंधित कुछ अन्य विषय

24.1 हिन्दी व्याकरण लेखन का ऐतिहासिक विकास

भारत में व्याकरण लेखन की समृद्ध परंपरा रही है। संस्कृत में पाणिनी की 'अष्टाध्यायी' हो या प्राकृत अपभ्रंश में हेमचंद्र कृत 'सिद्ध हेम-शब्दानुशासन' हो, यह प्रवृत्ति हमेशा देखी गई है कि भाषा के व्याकरणिक ढाँचे का निर्धारण किया जा सके। किन्तु, हिन्दी व्याकरण का विकास उतनी सहजता से नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि पुरानी हिन्दी और उससे विकसित बोलियों के विकास के बाद आचार्यों में लोक भाषाओं के प्रति वैसा सम्मान का भाव नहीं था जो उन्हें व्याकरण रचना हेतु प्रेरित कर पाता। हिन्दी में जन कवि तो होते रहे किन्तु वैयाकरण प्रायः नहीं हुए। यह कमी आधुनिक काल के आरंभ के आस-पास दूर होनी शुरू हुई।

प्रथम चरण

हिन्दी व्याकरण रचना के आरंभिक प्रयास 18वीं और 19वीं शताब्दी में हुए। माना जाता है कि औरंगजेब के समय मिर्जा खाँ ने ब्रजभाषा का व्याकरण लिखा जो हिन्दी का संभवतः पहला व्याकरण था। उपनिवेशवाद के दौर में कई विदेशी विद्वानों ने हिन्दी व्याकरण लिखने में रुचि दिखाई। 1715 के आस-पास एक हॉलैंड निवासी जोहन जोशुआ कैटलर ने हिन्दी व्याकरण लिखा जिसे डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने हिन्दी का पहला व्याकरण बताया। जॉर्ज ग्रियर्सन ने इसके कालखंड का निर्धारण किया। इसके बाद कई ऐसे व्याकरण प्रकाशित हुए, जैसे- जॉन गिलक्राइस्ट कृत 'हिन्दुस्तानी ग्रामर', प्लॉट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर', येट्स कृत 'हिंदुस्तानी ग्रामर', केलॉग कृत 'ए ग्रामर ऑफ हिन्दी लैंग्वेज' (1875) इत्यादि। इन ग्रंथों में 'केलॉग' द्वारा रचित ग्रंथ को सबसे प्रभावशाली माना जाता है। गौरतलब है कि फोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापक लल्लू लाल ने भी अंग्रेज प्रशासकों को पढ़ाने के लिए 'द ग्रैमैटिकल प्रिंसिपल्स ऑफ ब्रजभाषा' नामक व्याकरण लिखा था।

केलॉग के व्याकरण की विशेषताएँ

केलॉग के व्याकरण में ऐसी बहुत सी सामग्री है, जो उनसे पूर्व के किसी व्याकरण में नहीं मिलती। इस व्याकरण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

1. इस व्याकरण में हिन्दी और उर्दू के व्याकरणिक गठन में जो समानता है, उसी को इस व्याकरण का आधार बनाया गया है। यहाँ हिन्दी से अभिप्राय उस हिन्दी से है जिसे मानक परिनिष्ठित हिन्दी कहते हैं और जिसे स्कूलों में शिक्षा के लिए ग्रहण किया गया है।
2. हिन्दी के विद्वान के लिए हिन्दी के दो रूपों-ब्रज तथा अवधी का भी ज्ञान आवश्यक है; अतः इन दोनों रूपों का विशद विवेचन इस व्याकरण में किया गया है।
3. ब्रज तथा अवधी के अतिरिक्त इस व्याकरण में हिन्दी की अन्य स्थानीय बोलियों के शब्दरूपों और धातुरूपों पर भी विचार किया गया है। इससे बंगाल के पश्चिम और गुजरात-सिंध के पूर्व की भूमि के बीच हिन्दी क्षेत्र की सभी बोलियों का सामान्य ज्ञान हो जाता है तथा किसी विदेशी के लिए भी, इस विस्तृत भाग में कार्य करते हुए हिन्दी के स्थानीय रूप को समझने में कठिनाई दूर हो सकती है।
4. इस व्याकरण में उदाहरणों को चुनने में प्रायः लिखित पुस्तकों का ही सहारा लिया गया है। जहाँ भी मौखिक स्रोत से प्राप्त उदाहरण दिए गए हैं, वहाँ उनके ठीक होने की पूरी परीक्षा कर ली गई है। चूँकि यूरोपीय विद्वानों के हिन्दी में विदेशीपन के बने रहने की संभावना बनी रहती है; अतः केलाग ने अपने व्याकरण में यूरोपीय विद्वानों की हिन्दी की पुस्तकों से उदाहरण संकलित नहीं किए हैं।
5. इस व्याकरण में हिन्दी-क्षेत्र में प्रचलित चार लिपियों को भी अंकित किया गया है। ये लिपियाँ हैं- नागरी, कैथी, महाजनी और बिनियौटी।

डी.एल.पी. बुकलेट्स की विशेषताएँ

- आयोग के नवीनतम पैटर्न पर आधारित अध्ययन सामग्री।
- पैराग्राफ, बुलेट फॉर्म, सारणी तथा फ्लोचार्ट का उपयुक्त समावेश।
- विषयवस्तु की सरलता, प्रामाणिकता तथा परीक्षा की दृष्टि से उपयोगिता पर विशेष ध्यान।
- प्रत्येक अध्याय के अंत में विगत वर्षों में पूछे गए एवं संभावित प्रश्नों का समावेश।

Website : www.drishtiIAS.com
E-mail : online@groupdrishti.com

DrishtiIAS

YouTube Drishti IAS

drishtiias

drishtithevisionfoundation

641, First Floor, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-110009
Phones : 011-47532596, +91-8130392354, 813039235456